UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182111
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Libra

Call No. H82 G72B

Accession No. GH 516

Author गोविन्ददास

Title भारतेन्दु

This book should be returned on or before t
marked below.

भारतेन्दु

[पाँच अंकों में एक ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

सेठ गोविन्ददास

प्र।
दाता ।

ओरियण्टल बुक डिपो
१७०८ नई सड़क दिल्ली

प्रकाशक
ओरिएण्टल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली ।

मूल्य २)

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनाट सर्कस नई दिल्ली

निवेदन

पचासी नाटकों के लिखने के पश्चात् जब कुछ मित्रों के सुझाव पर मैंने पन्द्रह नाटक और लिखकर 'शतक' पूर्ण करने का विचार किया तब नाटकों के अनेक कथानकों पर चिंतन आरम्भ हुआ।

सन् १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम में मेरे प्रपितामह सेठ खुशालचन्द जी ने अंग्रेज-सरकार को सहायता दी थी, और उस सहायता के उपलक्ष्य में उन्हें हीरों से जड़ा हुआ सोने का एक कमरपट्टा मिला है। उस कमर-पट्टे पर अंग्रेजी में खुदा है—"सेठ खुशालचन्द को सन् १८५७ के बलवे में उनके द्वारा राजभक्तिपूर्ण जो सेवा की गई, उसके उपलक्ष्य में भारत सरकार द्वारा भेंट।" सन् १९३० के सत्याग्रह में एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए मैंने कहा था—"मैं नहीं जानता कि सन् १८५७ में मेरे परदादा का उस समय की सरकार को सहायता देने में क्या उद्देश्य था। संभव है, उन्होंने यह मानकर यह सहायता दी हो कि वह सरकार इस देश के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी, परन्तु बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि यह सरकार इस देश के सारे संकटों का कारण हुई। अतः मेरे परदादा की कृति एक पाप हुआ है। मैं उस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ और उस कमरपट्टे के पुश्त पर खुदवाना चाहता हूँ कि "जिस सरकार को स्थापित करने का परदादा ने प्रयत्न किया, उसी को उखाड़कर फेंकने का किया उनके परपोते ने।" मेरे इस भाषण पर दफा १२४ अ० के अन्तर्गत मुझे दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था।

मैं जानता था कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र अमीचन्द के वंशज हैं। अमीचन्द ने एक पाप किया था और मेरे मतानुसार हरिश्चन्द्र जी ने उस पाप का पूर्ण प्रायश्चित्त कर दिया। फिर भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी के जन्म-दाता माने जाते हैं। उस जमाने में उन्होंने हिन्दी को राजभाषा पद पर

प्रतिष्ठित करने तक का प्रयत्न किया था। हिन्दी की सेवा और उसे राज-भाषा पद पर बिठाने का प्रयत्न मेरे जीवन के भी प्रमुख कार्य रहे हैं। हरिश्चन्द्र जी ने मुख्यतः नाटक लिखे हैं और मैं भी एक छोटा-मोटा नाटक-कार हूँ। अतः मैंने इन पन्द्रह नाटकों में एक नाटक भारतेन्दु पर भी लिखने का निर्णय किया।

प्रस्तुत नाटक उसी निर्णय का फल है। ऐतिहासिक नाटकों के संबंध में मैंने अपने एक ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' की भूमिका में लिखा है—

"मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी लेखक को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी पुरानी कथा को तोड़-मरोड़ कर उसे एक नयी कथा ही बना दे। हाँ, कथा के अर्थ (Interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"

इस नाटक के लिखने में भी मैंने इसी नीति के परिपालन का प्रयत्न किया है।

इस नाटक में वर्णित समस्त घटनाएँ हरिश्चन्द्र जी के जीवन-चरित्रों से ली गयी हैं। परन्तु नाटक के गठन के लिए उन्हें आगे-पीछे अवश्य करना पड़ा है। फिर कुछ घटनाएँ भिन्न-भिन्न समयों पर हुई हैं। नाटक में उनका उल्लेख अलग-अलग नहीं किया जा सकता था। उन्हें इकट्ठा किया गया है। जैसे हरिश्चन्द्र जी के पिता गोपालचन्द जी ने उन्हें उनके प्रथम दोहे पर आशीर्वाद दिया था कि वे महाकवि होंगे। किसी अन्य अवसर पर जब हरिश्चन्द्र जी ने अपने पिता को तर्पण करते देख यह कहा कि बाबूजी पानी में पानी मिलाने से क्या लाभ? तब गोपालचन्द्र जी बोले, तू कुल बोरेगा। इन दोनों प्रसंगों को मैंने इकट्ठा कर दिया है। भारतेन्दु के भिन्न-भिन्न समय पर दिये गए दानों को भी मुझे एक ही दृश्य में बताना पड़ा है। माधवी तथा मल्लिका को भी एक ही दृश्य में। इसी प्रकार कुछ और परिवर्त्तन भी मैंने किये हैं, जैसे हरिश्चन्द्र जी के प्रेम-योगिनी नाटक के सूत्रधार का कथन मैंने भारत-दुर्दशा नाटक में सूत्रधार को लाकर कहलाया है। इस समय की परिस्थिति में मुझे भारत-दुर्दशा

नाटक खिलवाना तथा प्रेमयोगिनी नाटक के सूत्रधार का भारत-दुर्दशा नाटक में कथन अधिक उपयुक्त जान पड़ा। भारतेन्दु की उपाधि के पदवी-दान का भी मैंने इस नाटक में एक दृश्य जोड़ा है और उसमें हरिश्चन्द्र जी की उपाधि एक ताम्रपत्र में दी गयी, यह बताया है। इस ताम्रपत्र में मैंने भारतेन्दु की चन्द्रावली नाटिका में सूत्रधार के कहे हुए कुछ छन्द लिखवाये हैं और भारतेन्दु के भाषण में के उन दोहों में से कुछ दोहे कहलाये हैं, जो भाषण उन्होंने हिन्दी-वर्धिनी सभा प्रयाग में दिया था। साथ ही इस भाषण के अन्त में मैंने उनका कर्पूर-मंजरी नाटक का भरतवाक्य जोड़ दिया है। मेरा मत है कि इस प्रकार के परिवर्त्तन नाटककार के लिए क्षम्य ही नहीं, आवश्यक हैं, क्योंकि बिना इनके नाटक का ठीक गठन ही संभव नहीं हो सकता।

इस नाटक के प्रायः सभी पद्य भारतेन्दु के हैं। और हिरिया को छोड़कर सब पात्र ऐतिहासिक। मेरे मतानुसार हरिश्चन्द्र जी के जीवन में जो प्रधान-प्रधान बातें हुई हैं, उन्हें भी इस नाटक में कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में रखा गया है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के कुल के सदृश हमारा कुल भी वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का अनुयायी है और यह एक योग की बात है कि काशी का जो गोपालमंदिर हरिश्चन्द्र जी के कुल का गुरुद्वारा है, वही हमारे कुल का भी। हरिश्चन्द्र जी के कुल में जिस प्रकार श्री मदनमोहन जी की पुष्टिमार्गीय सेवा है, उसी प्रकार हमारे कुल का भी गोपाललाल जी का पुष्टिमार्गीय मन्दिर है। फिर उस जमाने में वेश्याओं और महफिलों के दौर-दौरे के कारण हमारे यहाँ भी वेश्याओं और महफिलों का खूब दौर-दौरा रहा। देश की उस समय की शायद ही कोई ऐसी प्रसिद्ध तवायफ हो जो हमारे यहाँ किसी-न-किसी अवसर पर न आयी हो। अतएव हरिश्चन्द्र जी जिस वायुमण्डल में जन्मे, पाले गए और रहे, मैं भी उसी प्रकार के वायुमण्डल में जन्मा, बड़ा किया गया और आरंभिक

जीवन में रहा। इसलिए इस नाटक का वायुमण्डल मेरा परिचित वायु-मण्डल है।

यह नाटक सुखान्त (Comedy) है या दुःखान्त (Tragedy), यह एक और ऐसा प्रश्न है, जिसके संबंध मे मै कुछ कहना उपयुक्त समझता हूँ। मैने उपसंहार दृश्य में हरिश्चन्द्र जी की मृत्यु दिखायी है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह नाटक दुःखान्त है। पर मै ऐसा नहीं मानता, क्योंकि यों तो मानव-जीवन का अन्त मृत्यु से ही होता है, अतः फिर तो हरेक के जीवन को ही दुःखान्त कहना होगा। यदि जीवनसंबंधी कोई नाटक लिखना हो, और संपूर्ण जीवन चित्रित करना हो तो प्रायः मृत्यु का दृश्य दिखाना ही होगा और मेरे मत से ऐसे नाटकों को दुःखान्त नाटक नहीं कहा जा सकता। फिर इस नाटक के अन्त मे मैने पं० श्रीधर पाठक की एक कविता उद्धृत की है, जिसके कारण यह नाटक दुःखान्त नहीं रह गया। मै दुःखान्त नाटक लिखने के विरुद्ध नहीं हूँ। मैने कई दुःखान्त नाटक लिखे भी है। मृत्यु से जिन नाटकों का अन्त होता है, उनमे भी कुछ नाटक दुःखान्त होते है, पर मृत्यु से अन्त होने वाले कौन नाटक दुःखान्त होते है, यह इस पर निर्भर करता है कि मृत्यु किन परिस्थितियों में होती है और इस मृत्यु का दर्शक या पाठक के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है।

लिखने के बाद इस नाटक को मैने भारतेन्दु जी के दौहित्र श्री ब्रजरत्न-दास जी और काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा के श्री गोविन्दप्रसाद जी केजदी-वाल को देखने के लिए भेजा। दोनो महानुभावों ने कुछ बड़े अच्छे सुझाव दिए, जिनमें से अधिकांश को इस नाटक मे ले लिया गया है। मै दोनों सज्जनों का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

—गोविन्ददास

मुख्य पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र—[नाटक में प्रवेश के अनुसार]

गोपालचन्द्र, उपनाम गिरधरदास—हरिश्चन्द्र के पिता

हरिश्चन्द्र—नाटक के नायक

राय कृष्णदेवशरणसिंह, उपनाम "गोप"—हरिश्चन्द्र के निकटतम मित्र

राधाकृष्णदास, उपनाम "बच्चा बाबू"—हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई जो सदा उनके साथ रहते थे

मन्नोदेवी—हरिश्चन्द्र की पत्नी

हिरिया—मन्नोदेवी की नौकरानी

मल्लिका—
माधवी — } हरिश्चन्द्र की उपपत्नियाँ

गोकुलचन्द्र—हरिश्चन्द्र के छोटे भाई

राय नृसिंहदास—हरिश्चन्द्र के फूफा

चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन'
प्रतापनारायण मिश्र
ठाकुर जगमोहनसिंह
रामशंकर व्यास
गोस्वामी राधाचरण } हरिश्चन्द्र के अन्य मित्र

विद्यावती—हरिश्चन्द्र की पुत्री

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् और समाज-सुधारक

माधोदास—हरिश्चन्द्र के मित्र

राजा शिवप्रसाद—हरिश्चन्द्र के अंग्रेजी शिक्षा देने वाले उनके गुरु

ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह—काशीनरेश

ईश्वरचन्द्र चौधरी—हरिश्चन्द्र के कुटुम्ब के होम्योपैथिक डाक्टर

सर सैय्यद अहमद—काशी के सदर आला

स्थान

काशी

समय

विक्रम संवत् १९१२ से विक्रम संवत् १९४१ तक

उपक्रम

स्थान

गोपालचन्द्र के चौखंभे वाले मकान में उनका पूजाघर

समय

प्रातःकाल

[पूजाघर के तीन ओर की दीवालें दिखती हैं जो तैल रंग से रंगी हैं। बीच की दीवाल के बीचोबीच श्रीनाथ जी और श्री यमुना जी के दो विशाल रंगीन चित्र हैं। न दोनों चित्रों के दोनों ओर काशी के गोपाल-मंदिर के श्री मुकुन्दराय जी और श्री गोपाललाल जी के चित्र हैं। इन चारों चित्रों के बीच में, पर इनसे नीचे काशी के गोपालमंदिर के गोस्वामी श्री गिरधर जी महाराज का चित्र है। दाहिनी ओर की भित्ति पर वल्लभकुल सम्प्रदाय की सातों गद्दियों की मूर्तियाँ श्री मथुरानाथ जी, श्री विट्ठलनाथ जी, श्री द्वारकानाथ जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री गोकुल-चन्द्रमा जी, श्री मदनमोहन जी और श्री बालकृष्ण जी के चित्र हैं। बायीं दीवाल पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी, उनके बड़े पुत्र श्री गोपी-नाथ जी, उनके छोटे पुत्र गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी और उनके सातों पुत्रों श्री गिरधर जी, श्री गोविन्द जी, श्री बालकृष्ण जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री रघुनाथ जी, श्री यदुनाथ जी और श्री घनश्याम जी के चित्र हैं। ये समस्त चित्र हाथ के बने हुए रंगीन हैं। गोपालचन्द्र लगभग २२-२३ वर्ष के गेहुँए वर्ण के दुबले-पतले व्यक्ति हैं। एक बगलबन्डी तथा सोला पहने हुए आसन पर बैठे दाहिने हाथ को गोमुखी में डाले जप कर रहे हैं। सिर खुला है। पीछे के बाल कुछ बड़े अर्थात् पीछे बालों के पट्टे हैं। खूब चौड़े ललाट पर वल्लभ सम्प्रदाय का लाल कुमकुम का तिलक है जिसके बीच में गोपीचन्दन के छापे लगे हुए हैं। आसन के दाहिनी ओर बेंत की एक

छोटी-सी टिपारी एक पटे पर रखी है, जिसमें रेशमी गद्दे, तकिये लगे हैं और इन पर श्रीनाथ जी का चित्र है। चित्र पर सुन्दर पुष्पों की वैजयन्तीमाला चढ़ी हुई है। गोपालचन्द्र के सामने एक पटे पर चाँदी के पञ्च पात्र रखे हैं। जप करते हुए गोपालचन्द्र के मुख से कभी-कभी जोर से "श्रीकृष्णः शरणं मम" मंत्र निकल जाता है। पाँच वर्ष की अवस्था के बालक हरिश्चन्द्र का प्रवेश। हरिश्चन्द्र भी बगलबन्डी पहने हैं, पर सोला न पहन धोती पहने हुए हैं। उनका सिर खुला है, जिस पर लम्बे बाल लहरा रहे हैं। हरिश्चन्द्र के ललाट पर भी वल्लभ सम्प्रदाय का लाल कुमकुम का तिलक है जिसके बीच में गोपीचन्दन के छापे हैं।]

हरिश्चन्द्र

बाबूजी, मैंने भी आपके बलराम कथामृत में वाणासुर उपाख्यान के लिए एक दोहा लिखा है।

गोपालचन्द्र

(जप करते हुए) मैं अपरस में हूँ, छूना मत।

हरिश्चन्द्र

(एक दूसरे आसन को कुछ दूर सरकाकर उस पर बैठते हुए) जानता हूँ, छुऊँगा कैसे ? सुनेंगे मेरा दोहा ?

गोपालचन्द्र

सुना, श्रीकृष्णः शरणं मम, श्रीकृष्णः शरणं मम।

हरिश्चन्द्र

दोहा है बाबू जी !

लै व्याँडा ठाढ़े भये,
श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन्य को,
हनन लगे भगवान॥

गोपालचन्द्र

सुन्दर दोहा है, बबुआ ! पहली बार में ही ऐसा अच्छा दोहा कदाचित् ही किसी ने लिखा हो । श्रीकृष्णः शरणं मम, श्रीकृष्ण शरणं मम ।

हरिश्चन्द्र

ऐसा बाबूजी ?

गोपालचन्द्र

हाँ, हाँ बबुआ । फिर तू अभी पाँच वर्ष का ही तो है ।

हरिश्चन्द्र

(अपना दोहा गुनगुनाते हुए)

"लै व्याँडा ठाढ़े भए, (हँसते हुए)

व्याँडा बाबू जी, व्याँडा !

"श्री अनिरुद्ध सुजान,
बाणासुर की सैन्य को"
हनन लगे, (खूब जोर जोर से)
हनन लगे, हनन लगे भगवान ॥

गोपालचन्द्र

(गोमुखी को तीन बार आँखों में लगाते हुए) श्रीकृष्णः शरणं मम, श्रीकृष्णः शरणं मम । **(दाहिना हाथ गोमुखी से बाहर निकाल गोमुखी को लपेटते हुए)** तू महाकवि होगा बबुआ ।

हरिश्चन्द्र

महाकवि ! जैसे आप हैं ?

गोपालचन्द्र

नहीं, मुझसे भी बड़ा । जैसे कालिदास थे । जसे सूरदास थे ।

हरिश्चन्द्र

इन्होंने बहुत दोहे लिखे थे ?

गोपालचन्द्र

दोहे ही नहीं, न जाने कितनी तरह के छन्द। (**तर्पण करते हैं, बीच-बीच में ज़ोर से उनके मुख से निकलता है**) तृप्यन्ताम्।

हरिश्चन्द्र

(**तर्पण के कृत्य को ध्यान से देखते हुए**) बाबूजी, यह आप क्या कर रहे हैं?

गोपालचन्द्र

(**तर्पण करते हुए**) तर्पण।

(**गोपालचन्द्र तर्पण करते रहते हैं और बीच-बीच में तृप्यन्ताम्, तृप्यन्ताम् बोलते रहते हैं। हरिश्चन्द्र उस कृत्य को देखते रहते हैं।**)

हरिश्चन्द्र

(**तर्पण पूरा होने पर**) इस तरह पानी में पानी मिलाने से क्या लाभ है, बाबूजी?

गोपालचन्द

(**अपना सिर ठोकते हुए**) जान पड़ता है तू कुल बोरेगा।

हरिश्चन्द्र

(**कुछ विचारते हुए**) तो...तो मैं...मैं महाकवि भी होऊँगा और कुल भी बोरूँगा! आप मुझे वर भी देते हैं और शाप भी।

यवनिका

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के चौखभे वाले मकान का एक कक्ष

समय

प्रात काल

[इस कक्ष मे हरिश्चन्द्र के घर के ठाकुर श्री मदनमोहन जी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। कक्ष के तीन ओर की दीवाले दीखती है। पीछे की दीवार मे रेशम की गोट लगी हुई पिछवाई बँधी है। पिछवाई के आगे सागामाची (एक प्रकार का सिंहासन) है। सागामाची पर गद्दी, तकिए लगे है। गद्दी पर मदनमोहन जी और स्वामिनी जी की धातु-प्रतिमाएँ है। मंगला के के कारण मूर्त्तियों पर बहुत थोड़ा शृंगार है। मंगला की आरती के अनन्तर इस समय कक्ष मे केवल हरिश्चन्द्र है। हरिश्चन्द्र भूमि पर बैठे हुए तम्बूरा लिए गा रहे है। अब हरिश्चन्द्र युवावस्था मे प्रवेश कर चुके है। वर्ण कुछ साँवला, कद कुछ ऊँचा, शरीर एकहरा, न बहुत मोटे और न दुबले। आँखे कुछ छोटी और धँसी हुई, नाक बड़ी सुडौल, कान कुछ बड़े, जिन पर घुँघराले बालों की लटकती हुई लटे। ललाट ऊँचा, जिस पर वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का कुमकुम का तिलक। ऊपर के ओंठ पर रेख निकल आई है। शरीर पर बगलबन्डी और सोला। वर्ण साँवला होने पर भी सारी आकृति सुन्दर।]

हरिश्चन्द्र

चिर जीयो मेरो श्री वल्लभ-कुल।
माया मत खर तिमिर दिवाकर
प्रेम अमृत पय रस सागर-पुल॥

कलि खल-गन-उद्धरन रसिक जन
सरन-करन विरहिन विरहाकुल।
हरीचन्द देवी जन प्रियतम
पतित-उद्धरन महिमा अन-तुल॥

(**पद पूर्ण होने पर तम्बूरा रखते हुए**) प्रभो, आज...आज मैं, अपना सोलहवाँ..सोलहवाँ वर्ष पूर्ण कर सत्रहवें में प्रवेश कर रहा हूँ। कानून में चाहे...चाहे व्यक्ति अठारह..अठारह वर्ष पूरे करने पर बालिग, हाँ, बालिग होता हो परन्तु...परन्तु हमारे यहाँ तो कहा गया है—"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।" (**चुप होकर कुछ देर मूर्त्ति को देखने के पश्चात्**) कदाचित्..कदाचित्, नाथ आपकी इस जन पर विशेष.... विशेष कृपा है। इसीलिए तो पाँच वर्ष की अवस्था में ही "लै ब्याँडा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान। बाणासुर की सैन्य को हनन लगे भगवान।" दोहा बना डाला था, और....और पिता जी से आशीर्वाद लिया था कि महा-कवि होऊँगा। सोलह...सोलह वर्ष का होकर, आज...आज प्रभो, आपसे प्रार्थना...प्रार्थना करता हूँ अपने....अपने जीवन के सदृश ही मेरा... मेरा जीवन भी पूर्ण बनाइये। आपने यह संसार रचा है, यह देह दिया है, ये इन्द्रियाँ दी हैं। अतः...अतः नाथ शून्य....केवल शून्य आकाश को अव-लोकते हुए इस संसार में सब कुछ त्याज्य मानकर इस...इस संसार के परे ही न देखा करूँ। आपका...आपका जीवन भी संसार को असार मान नहीं चला। श्रीमद्भगवद्गीता का आपका उपदेश भी समस्त संसारी वस्तुओं को त्यागने का नहीं है।...श्री वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग तो संसार को भी सत्य मानता है। हम पुष्टिमार्गी वैष्णव, शंकराचार्य की उक्ति "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" के अनुयायी नहीं हैं। यदि....यदि यही होता तो...तो आप इस जगत् में अवतार ही क्यों लेते। (**चुप हो कुछ देर मदनमोहन जी की मूर्त्ति को निहारने के पश्चात्**) तो...तो जो जीवन आपने दिया है, उस...उस जीवन का सुख भी भोगूँ और...और कर्त्तव्यों का पालन भी करूँ...इस...इस...परिवर्त्तनशील संसार में

कर्त्तव्य...कर्त्तव्य भी समय-समय पर बदलते रहते हैं। इस समय...इस समय के कर्तव्य ?...देश की दुर्दशा हो गयी है।...विदेशी राज्य में कहीं ..कहीं किसी देश की सुदशा संभव है ? और...और प्रभो ! इस दुर्दशा को लाने में मेरे पूर्वज अमीचन्द...अमीचन्द का भी बड़ा भारी...बड़ा भारी हाथ रहा है। उन्होंने यदि लार्ड क्लाइव के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो सिराजुद्दौला का पतन...पतन न कराया होता तो...तो क्या देश की आज...आज यह दशा होती ? अतः...अतः मेरा..यथार्थ कर्त्तव्य है अपने...अपने पूर्वज अमीचन्द...अमीचन्द के पाप का प्रायश्चित्त... प्रायश्चित्त और...और भगवन्, इस...इसके लिए जिस...जिस धन के हेतु उन्होंने यह..यह कुकर्म किया उस धन को मैं...मैं जीवन...जीवन-भर तुच्छ...तुच्छातितुच्छ मानूं। (**तम्बूरा उठाकर फिर गाते हैं।**)

नैन भरि देखौं गोकुलचंद।
श्याम बरन तन खौर विराजत अति सुन्दर नंद-नंद॥
बिथुरी अलकैं मुख पै झलकैं मनु दोउ मन के फंद।
मुकुट लटक निरखत रवि लाजत छबि लखि होत अनंद॥
संग सोहत वृषभानु-नंदिनी प्रमुदित आनंद-कंद।
हरीचंद मन लुब्ध मधुप तहँ पीवत रस मकरंद॥

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के चौखंभ वाले मकान में हरिश्चन्द्र का बैठकखाना

समय

सन्ध्या

[बैठकखाना ३७ फुट लम्बा और १७ फुट चौड़ा है। बैठकखाने की तीन ओर की दीवालें दिखती हैं, जिन पर गोस्वामी श्री गिरधर जी

महाराज, महाराजा रणजीतसिंह, महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह, राणा जंगबहादुर, टीपू सुलतान, फतेहचन्द, गोपाल चन्द, महारानी विक्टोरिया आदि की तस्वीरें हैं। दीवालों में कुछ आदमकद खिड़कियाँ हैं जो चौखंभा गली की ओर खुलती हैं। छत से काँच के झाड़, फानूस, हण्डियाँ, गोले लटक रहे हैं। जमीन पर मिर्जापुरी गलीचा है, जिस पर पीछे की दीवाल से सटी हुई गद्दी बिछी है और गद्दी पर तकिये लगे हैं। गद्दी के नीचे एक छोटी-सी चौकी पर लिखने-पढ़ने का सामान है। दोनों ओर की दीवारों के निकट कुछ गद्दीदार सोफे और कुर्सियाँ हैं जो उस समय के ढंग की बनी हैं। गद्दी के एक ओर कृष्णदेवशरणसिंह बैठे हैं। कृष्णदेवशरणसिंह की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। ये गेहुँए रंग के ऊँचे और पुष्ट शरीर के व्यक्ति हैं, मुख पर मूछें भी हैं। लम्बा अँगरखा और ढीली मुहरी का पाजामा पहने हैं। सिर पर चौगोशिया गोल टोपी है। राधाकृष्णदास का प्रवेश। ये १६-१७ वर्ष के कुमार हैं। गेहुँए वर्ण के दुबले पतले। कुरता और धोती पहने हैं।]

कृष्णदेवशरणसिंह

कहो कहाँ है? सदा तीसरे पहर बैठकखाने में आ जाते थे, अब तो शाम हो रही है। तबियत तो ठीक है न!

राधाकृष्णदास

दोपहर तक तो बिल्कुल ठीक थी। गोपालमंदिर में मुकुन्दराय जी और गोपाललाल के राजभोग के दर्शकों में भी पहुँचे थे। आ ही रहे होंगे।

कृष्णदेवशरणसिंह

लेकिन इन दिनों कुछ अनमने रहते हैं।

(नेपथ्य में गान की ध्वनि आती है।)

याही सों घनश्याम कहावत।
द्रवत दीन-दुरदसा विलोकत करुना रस बरसावत॥
भींगे सदा रहत हिय रस सों जन-मन-ताप जुड़ावत।
हरीचन्द से चातक जन के जिय की प्यास बुझावत॥

राधाकृष्णदास

(गीत पूर्ण होने पर) गा रहे हैं।

कृष्णदेवशरणसिंह

कितनी परिष्कृत भाषा है और कितनी उत्कृष्ट भावनाएँ!

राधाकृष्णदास

स्वाभाविक कवि है।

कृष्णदेवशरणसिंह

आशुकवि भी।

राधाकृष्णदास

पाँच वर्ष की अवस्था में बनाया था पहला दोहा।

कृष्णदेवशरणसिंह

ओर अब तो दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति हो रही है।

राधाकृष्णदास

पर, घर की अवनति की ओर देखने ही नहीं।

[पान की डिब्बी लिए तथा पान चबाते हुए हरिश्चन्द्र का प्रवेश।] इस समय वे कुरता और पाजामा पहने हुए हैं, सिर खुला है। हरिश्चन्द्र को देख कृष्णदेवशरणसिंह और राधाकृष्ण खड़े हो जाते हैं।]

हरिश्चन्द्र

(आगे बढ़ते हुए कृष्णदेवशरणसिंह से) बहुत देर से बैठे हुए हो क्या?

[तीनों गद्दी पर बैठ जाते हैं।]

कृष्णदेवशरणसिंह

हाँ, तीसरे पहर से ही आ गए थे।

राधाकृष्णदास

आज इतनी देर से कैसे निकले? तबियत तो अच्छी है न?

हरिश्चन्द्र

तबियत बिलकुल अच्छी है। किन्तु इन दिनों जिस एक विचार में पडा हुआ था ओर जिसका हल नही निकल रहा था आज उसी का हल निकालने मे इतनी देर लग गयी। **(पानों की डिब्बी खोल राय कृष्णदेव-शरणसिंह और राधाकृष्णदास को बारी-बारी से पान देते है तथा फिर स्वयं पान खाते है।)**

कृष्णदेवशरणसिंह

(पान खा राधाकृष्णदास से) मैंने कहा था न, इन दिनों कुछ अनमने रहते है।

हरिश्चन्द्र

अनमना क्या, विचार-वारिधि में गोते लगाकर अपने कर्त्तव्य के मुक्ता ढूँढ रहा था।

कृष्णदेवशरणसिंह

यह कई दिन से चल रहा था न!

हरिश्चन्द्र

हाँ, कई दिनों से।

राधाकृष्णदास

(पान चबाते हुए) और आज वे मोती मिल गये?

हरिश्चन्द्र

हाँ, आज मिल गये, बच्चा बाबू।

कृष्णदेवशरणसिंह

उस विचारवारीश और उन मुक्ताओं का थोड़ा वर्णन करोगे?

हरिश्चन्द्र

तुम लोगों के सामने न करूँगा तो किसके सामने करूँगा। देखो, यह मानते हो न कि इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना मानव है?

कृष्णदेवशरणसिंह

अवश्य।

राधाकृष्णदास

इसमें क्या संदेह है !

हरिश्चन्द्र

भगवान ने मनुष्यशरीर जहाँ एक ओर नाना प्रकार के सुख भोगने को दिया है, वहाँ दूसरी ओर भगवान द्वारा रचित इस संसार के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करन के लिए भी।

कृष्णदेवशरणसिंह

वेशक।

राधाकृष्णदास

निःसंदेह।

हरिश्चन्द्र

परन्तु, मानव की शक्ति अपरिमित नहीं, वह सीमाबद्ध है। अतः वह इन कर्त्तव्यों का पालन भी एक हद तक ही कर सकता है।

कृष्णदेवशरणसिंह

और मनुष्य की यह शक्ति भी एक सी नहीं होती।

राधाकृष्णदास

हाँ, कोई व्यक्ति अपने कुटुम्ब के प्रति, कोई अपने पड़ौसियों के प्रति, कोई अपने मुहल्ले के प्रति, कोई अपने नगर के प्रति, कोई अपने प्रांत के प्रति और कोई समूचे देश के प्रति इस कर्त्तव्य के पालन की सामर्थ्य रखता है।

हरिश्चन्द्र

उम्र बहुत कम है, पर बात बुजुर्गों की सी करते हो, इसीलिए कई बार सोचने लगता हूँ कि अब तुम्हें बच्चा कहूँ या नहीं। (**कुछ रुककर**) पर मनुष्य को कर्त्तव्य-पालन का यह दायरा बड़े से बड़ा रखने का प्रयत्न

करना चाहिये। साथ ही यह भी मानोगे कि इस संसार के परिवर्तनशील होने के कारण परिस्थिति के अनुसार यह कर्त्तव्य भी परिवर्तित होता रहता है।

कृष्णदेवशरणसिंह

हाँ, कुछ स्थायी बातों को छोड़कर।

हरिश्चन्द्र

जैसे ?

कृष्णदेवशरणसिंह

जैसे, सत्य बोलना, चोरी न करना, इत्यादि।

राधाकृष्णदास

पर इन बातों मे भी अपवाद हो सकते हैं।

कृष्णदेवशरणसिंह

जैसे ?

राधाकृष्णदास

कभी-कभी झूठ बोलना कर्त्तव्य माना गया है।

हरिश्चन्द्र

(मुस्कराकर) और किसी का हृदय चुराना भी कर्त्तव्य से विमुख होना नही है।

[अट्टहास]

हरिश्चन्द्र

जो कुछ हो अधिकतर परिस्थितियों के अनुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय होता है। इस समय हमारे देश की जो परिस्थिति है उसमें हर देश निवासी का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है देश-भक्ति के भावों को प्रदीप्त करना। किसी कृति के पहले विचार होता है और विचार के पश्चात् कृति। सुधार, अंग्रेजी में 'रिफारमेशन', के पूर्व उस सुधार की भूमि के निर्माण के लिए विचार-परिवर्तन, अंग्रेजी में 'रिनासान्स', होता है। रिनासान्स

का युग प्रधानतया साहित्य-सृजन का युग होता है। फरांसीसी क्रान्ति संभव ही न थी यदि फ्रान्स मे रूसो तथा वाल्टेयर ने साहित्य-सृजन न किया होता।

कृष्णदेवशरणसिह

दृष्टांत तुमने बहुत सुन्दर दिया।

राधाकृष्णदास

इसमे सदेह नही।

हरिश्चन्द्र

भारत की इस समय की परिस्थिति मे मै यह मानता हूँ कि "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल", अतः मै हिन्दी के द्वारा धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रो मे रिनामान्स करूँगा और इसके लिए मैंने आज अपना माध्यम भी चुन लिया।

कृष्णदेवशरणसिह

कौन-सा ?

हरिश्चन्द्र

तुम जानते हो मै एक छोटा-सा कवि हूँ।

राधाकृष्णदास

छोटा-सा ?

कृष्णदेवशरणसिह

हम लोगों के सामने भी सकोच !

हरिश्चन्द्र

हमारे यहाँ काव्य के दो रूप है, श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य से श्रेष्ठ है।

कृष्णदेवशरणसिह

हाँ, क्योंकि जहाँ श्रव्य काव्य केवल श्रवणेन्द्रिय से आनन्द देता है वहाँ दृश्य काव्य श्रवणेन्द्रिय और चक्षु-इन्द्रिय दोनों से।

राधाकृष्णदास

नाटक हमारे यहाँ साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप माना जाता है।

हरिश्चन्द्र

हिन्दी का पहला मौलिक नाटक पिताजी ने लिखा था—'नहुष'। मैंने आज यह निर्णय भी किया है कि मेरे साहित्य-सृजन का मुख्य माध्यम नाटक होगा।

[नेपथ्य में घण्टे का शब्द सुनायी देता है।]

हरिश्चन्द्र

मदनमोहन जी की शयन-आरती हो रही है। राधाकृष्णदास तो जावेंगे ही। **(कृष्णदेवशरणसिंह से)** दर्शन करने न चलियेगा ?

कृष्णदेवशरणसिंह

(एक साथ) अवश्य।

[तीनों का प्रस्थान। चलते-चलते हरिश्चन्द्र फिर पान खाते हैं।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान में मन्नोदेवी का कमरा

समय

अर्धरात्रि

[कमरे के तीन ओर की दीवालों पर तैल रंग है। दोनों ओर की दीवालों में एक-एक दरवाजा है और बीच की दीवार में एक खिड़की। दरवाजे और खिड़कियों के किवाड़ों में काँच हैं। किवाड़ सब बन्द हैं। बीच की दीवाल की खिड़की के दोनों ओर दो बड़े शीशे लगे हुए हैं। दाहिनी ओर की दीवाल में श्रीनाथ जी का और बायीं ओर की दीवाल में यमुना जी का एक बड़ा चित्र है। ये चित्र हाथ के बने हुए रंगीन हैं। छत से काँच के

झाड़, फानूस, हंडिया और गोले लटक रहे हैं। जमीन पर गलीचा है, दाहिनी ओर की दीवाल के निकट तीन पलंग बिछे हुए हैं, एक कुछ छोटा है और उस पर विद्यावती सो रही है। दो पलंग खाली हैं। बायीं ओर की दीवाल के निकट कुछ कुर्सियाँ हैं, बीच की दीवाल से सटी हुई एक गद्दी बिछी हुई है, जिस पर तकिए लगे हैं। इस गद्दी पर मन्नोदेवी बैठी हुई हैं। मन्नोदेवी गेहुँए वर्ण की सामान्य कद की शरीर से कुछ स्थूल महिला हैं, अवस्था हरिश्चन्द्र से २–४ वर्ष कम। मन्नोदेवी एक रंगीन साड़ी और चोली पहने हैं और सोने के हलके आभूषण धारण किये हैं। पैरों में चाँदी के छड़े और बिछिया हैं। मन्नोदेवी के सामने गद्दी के नीचे गलीचे पर हिरिया बैठी ह। वह साँवले रंग की दोहरे शरीर की प्रौढ़ा स्त्री है, सफेद रंग की साड़ी पहने हैं और मोटे से भद्दे चाँदी के आभूषण हैं।]

मन्नोदेवी

आधी रात तो बीत गयी हिरिया !

हिरिया

आजकल तो रोज ही यही होता है मालकिन !

मन्नोदेवी

मुझ निगोड़ी को नींद भी तो नहीं आती।

हिरिया

नींद आये कैसे ?

मन्नोदेवी

क्यों, जब उन्हें परवाह नहीं तब मैं ही क्यों मरा करूँ !

हिरिया

यह कैसे हो सकता है, मालकिन ! मरद चाहे परवाह न भी करे पर औरत.....

मन्नोदेवी

(बीच में) नहीं,(यदि मर्द औरत की परवाह नहीं करता तो औरत को भी मर्द की परवाह नहीं करनी चाहिये।)

हिरिया

मर्द औरत बराबरी के थोड़ी ही होते हैं ?

मन्नोदेवी

बराबर के नहीं होते तो और क्या होता है, दोनों को भगवान ने एक-सा बनाया है ?

हिरिया

एक-सा कहाँ बनाया है, मालकिन ? दाढ़ी-मूंछें ही औरत के कहाँ निकलती हैं ?

मन्नोदेवी

पर वे तो सदा यही कहते हैं कि स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं और वे कहते हैं इतना ही नहीं, उनके नाटक उठाकर देखो, उनके नाटक की स्त्रियाँ पुरुषों से भी महान रहती हैं। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की रानी शैव्या, नीलदेवी नाटक की नायिका नीलदेवी, किसी को भी देख लो।

हिरिया

कहने और लिखने से क्या होता है, व्यवहार देखो मालकिन ! आपकी कितनी परवाह करते हैं !

मन्नोदेवी

अब मैं भी उनकी परवाह न करूँगी।

(उठकर विद्यावती के पलंग के निकट जा उसका चेहरा देखते हुए हिरिया से) अब मैं अपना सर्वस्व इसी विद्या को समझ इसी में अपने को विलीन कर दूँगी। **(आँखों में आँसू भर आते हैं।)**

हिरिया

(जो मन्नोदेवी के उठकर विद्यावती के पलंग के निकट जाते समय स्वयं भी खड़ी होकर उनके निकट खड़ी हो गई थी) मालकिन, मैं तो आपको देख-देख कर आधी हो गयी हूँ। जब तक मालिक भोजन न करेंगे, आप भूखी बैठी रहेंगी। जब तक वे सोने न आयेंगे, आप जागती रहेंगी और इस सबके ऊपर घर की चिन्ता खाये जाती है।

मन्नोदेवी

(पुनः आकर गद्दी पर बैठते हुए) कल से देख लेना, दोपहर को मदन-मोहन जी की राजभोग की आरती हुई तथा सन्ध्या को मदनमोहन जी की शयन आरती और मैंने महाप्रसाद लिया, चाहे वे कभी भी आया करें। रात्रि को ९ बजे का घण्टा बजा और विद्या सोई कि मैंने भी शैय्या की शरण ली, चाहे वे रातभर यार-दोस्तों में तथा महफिलों में गुलछर्रे उड़ा रातें बिताया करें।

[हरिश्चन्द्र का कुछ गुनगुनाते हुए प्रवेश। अब हरिश्चन्द्र की मूँछें बढ़ गयी हैं, जिनसे उनकी बढ़ी हुई अवस्था ज्ञात होती है। उनके एक हाथ में पानों की डिब्बी और दूसरे में दावात कलम और कागज है। हरिश्चन्द्र को देख हिरिया का प्रस्थान।]

हरिश्चन्द्र

(मन्नोदेवी के निकट गद्दी पर रखे हुए एक मसनद पर बठते हुए) ठीक, आज तुमने बिलकुल ठीक निर्णय किया मन्नो! तुम्हें ठीक समय खा लेना चाहिये। ठीक समय सो जाना चाहिये। **(पान की डब्बी और लिखने का सामान जमीन पर रखते हैं।)**

मन्नोदेवी

(क्रोध से) पर तुम ठीक समय न आओगे, ठीक समय न खाओगे, ठीक समय न सोओगे।

हरिश्चन्द्र

तुम समझती हो मैं इसके लिए प्रयत्न नहीं करता। (**पान खाते हैं।**)

मन्नोदेवी

चूल्हे में जाय तुम्हारा प्रयत्न।

हरिश्चन्द्र

अब तक तो यह अवश्य चूल्हे में गया है, पर क्या करूँ!

मन्नोदेवी

करो क्या, ठीक समय आना, ठीक समय खाना, ठीक समय सोना, यह तुम्हारे हाथ की बात है या और के?

हरिश्चन्द्र

यही तो तुम समझती नहीं। यदि यह सब मेरे हाथ में होता तो इस कमरे में नित्य का लंकाकाण्ड होते हुए भी...

मन्नोदेवी

तुम्हारे हाथ में नहीं है तो किसके हाथ में है?

हरिश्चन्द्र

कभी किसी नाटक के नायक के हाथ में, कभी किसी नाटक की नायिका के हाथ में, कभी किसी दोहे के, कवित्त के, सवैये के, पद के किसी चरण या पंक्ति के हाथ में।

मन्नोदेवी

(**क्रोध से**) और कभी किसी मुफ्तखोरे, लफंगे, निठल्ले यार-दोस्त के हाथ में और कभी किसी कुलटा व्यभिचारिणी या वेश्या के हाथ में।

हरिश्चन्द्र

हाँ, यह भी ठीक है, तो यह तो तुम मान गईं न कि मेरे हाथ में नहीं है?

[कुछ देर निस्तब्धता]

मन्नोदेवी

तुम्हें कुछ नहीं दिख रहा है।

हरिश्चन्द्र

यह तुमने खूब ही कहा, मेरे दोनों बाह्य नेत्र ही दुरुस्त नहीं हैं, पर अब तो मेरे अन्तरचक्षु भी खुल गये हैं, मुझे सारा भूत और वर्त्तमान दिख रहा है; यह नहीं, भविष्य भी दिख रहा है।

मन्नोदेवी

सारे संसार का भूत, वर्त्तमान और भविष्य दिख रहा होगा पर अपना और अपने घर का नहीं।

हरिश्चन्द्र

अरे, यह तो तुमने बहुत छोटी बात कह दी। अपना व अपने घर का! इस पृथ्वी पर कितने मानव आये और गये। कितने सम्राट हुए और कितने करोड़पति, कितने साम्राज्य बने और कितने घर, कहाँ हैं आज वे सब सम्राट, करोड़पति, साम्राज्य और घर?

मन्नोदेवी

ओह! तुम्हें समझाना तो अब असम्भव होता जा रहा है।

हरिश्चन्द्र

होता जा रहा है, यह न कहो, यह कहो, हो गया है। इसीलिए अभी तुमने मेरे आने के पहले जो यह कहा था कि स्वयं अपना सब काम ठीक समय करोगी और मेरी पर्वाह न करोगी वह तुम्हारा निर्णय सोलहों आने ठीक है।

मन्नोदेवी

(दीर्घ निश्वास छोड़कर) कहने से क्या होता है, क्रोध से कह दिया होगा, पर कर न पाऊँगी। कदाचित् कभी...कभी भी न कर पाऊँगी। **(आँखों से आँसू टपकने लगते हैं।)**

हरिश्चन्द्र

(मन्दोदेवी को देखते हुए कातर स्वर में) कितनी···कितनी चिन्ता है तुम्हे मेरी, मुन्नो! अब तो एक दिन की बात नही रह गयी है, नित्य की ही हो गई है। कभी भी समय पर खाने नही आता, जब आता हूँ देखता हूँ तुम्हे भूखे-प्यासे प्रतीक्षा करते हुए। कभी भी समय पर सोने नही आता, और जब आता हूँ, केवल देखता हूं, चाहे कितनी ही रात बीत गयी हो, तुम बैठी हो बाट देख रही हो। अब तो अन्य बातें भी छिपी नही रहीं। मेरे सदृश दुश्चरित्र, पतित पर भी तुम्हारा वैसा ही प्रेम, वैसी ही श्रद्धा, वैसी ही भक्ति। कहाँ···कहाँ मैं और कहाँ · कहं तुम, कितना ··कितना पतित हूं मैं, और···और कितनी···कितनी पावन हो तुम, कदाचित्···कदाचित् भारतीय नारी ही ऐसी हो सकती है।

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के रामकटोरा बाग का एक हिस्सा

समय

रात्रि

[बीचोंबीच एक बड़ा-सा पक्का चबूतरा बना हुआ है। उसके पीछे उसी से लगा हुआ एक मकान का कुछ हिस्सा दीख पड़ता है जो रात्रि के कारण धुंधला-धुंधला है। चबूतरा लगभग ५० फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा है। चबूतरे पर सफेद चादर तानकर बिछायी गयी है। इस चादर में चारों ओर पीतल के छल्ले लगे हैं। इन्हीं छल्लों में डोरी डालकर चबतरे के नीचे कीलें गाड़ उस डोरी को कीलों में बाँध चादर को इस प्रकार खींचा गया है, जिससे नृत्य के समय इस चादर में शल न पड़े। चबूतरे के चारों ओर फूलों की क्यारियाँ हैं, जिनमें विविध प्रकार के पुष्प खिले हुए हैं। चबूतरे के पीछे और दोनों ओर चमेली की बागा लगी है। शरद-ऋतु के कारण चमेली खूब फूली हुई है। चबूतरे पर की सफेद चादर के एक ओर लम्बी गद्दी बिछी है, जिस पर सफेद खोली है। गद्दी पर सफेद खोलियों से ढके हुए अनेक मसनद हैं। इन मसनदों पर चमेली के गजरे रखे हुए हैं। इस समय इस गद्दी पर हरिश्चन्द्र और उनके निकट ही मल्लिका बैठी है। मल्लिका परम सुन्दर युवती है। वह श्वेत वस्त्र धारण किये है। मल्लिका मोती के आभूषण भी पहने है। गद्दी के नीचे चाँदी के पानदान, इत्रदान, गुलाबपाँश आदि रखे हुए हैं। हरिश्चन्द्र के सामने दावात, कलम और कागज रखे है। आज शरद्पूर्णिमा है और आकाश में पूर्णचन्द्र की चन्द्रिका से सारा दृश्य आलोकित है।]

हरिश्चन्द्र

(मल्लिका से) मल्लिका, यों तो मैं तुम्हें सदा मल्लिका ही कहता हूँ, पर आज शरद् पूर्णिमा के दिन तो साहित्य-सृजन के लिए जो तुमने अपना उपनाम चन्द्रिका रखा है, वह कदाचित् अधिक उपयुक्त है।

मल्लिका

मेरा चन्द्रिका नाम भी तो आप ही ने रखा है, नाथ !

हरिश्चन्द्र

(आकाश में चन्द्रमा को देख मल्लिका को देखते तथा चमेली का एक गजरा उठाते हुए) जितनी तुम सुन्दर हो उतने ही तुम्हारे दोनों नाम भी सुन्दर हैं। चन्द्रिका को तुममें द्युति है, और **(चमेली के गजरे को उसके गले में डालते हुए)** मल्लिका की सुगन्ध।

मल्लिका

पर, यह द्युति के निखरने और सुगन्ध के फैलने का कारण कौन है ? आप ही न !

[माधवी का प्रवेश। वह भी सुन्दर युवती है। आज वह भी श्वेत वस्त्र तथा मोतियों के आभूषण धारण कर आयी है। माधवी को देख हरिश्चन्द्र और मल्लिका खड़े हो आगे बढ़ते हैं।]

मल्लिका

शरद् पूर्णिमा के दिन स्वागत करती हूँ, माधवी जीजी !

हरिश्चन्द्र

(आदाब बजाकर) और मैं आदाब बजाता हूँ, आलीजान !

[मल्लिका हँस पड़ती है, तीनों गद्दियों पर बैठते हैं।]

माधवी

आप छेड़े बिना न मानोगे, क्यों ?

हरिश्चन्द्र

छेड़ रहा हूँ ? तुम्हारा नाम आलीजान नहीं है ?

माधवी

मेरा नाम माधवी, केवल माधवी है। नामकरण के समय जगतगंज में माता-पिता ने माधवी नाम रखा था और अभी भी माधवी है।

हरिश्चन्द्र

और, बीच में तो आलीजान हो गया था ?

माधवी

नरक से निकालकर स्वर्ग में लाने के पश्चात् नरक का क्यों स्मरण दिलाते हो।

मल्लिका

आप जीजी को छेड़कर कभी-कभी रस भंग कर दिया करते हैं।

हरिश्चन्द्र

मज़ाक भी न करूं ?

मल्लिका

पर, इस मज़ाक से उन्हें दुःख पहुँचता है।

हरिश्चन्द्र

(माधवी के कंधे पर हाथ रख) अच्छा, अच्छा। माधवी, सतत माधवी, सदा माधवी।

माधवी

(मुस्कराकर) कलियुग के कन्हैया, सतत कलियुग के कन्हैया, सदा कलियुग के कन्हैया।

[तीनों का अट्टहास]

माधवी

अच्छा, यह कहिए पूजनीय मन्नोदेवी जी के पास होकर आये हैं या नहीं ?

हरिश्चन्द्र

अभी वहाँ जाने का समय ही कहाँ मिला। गोपालमंदिर में मुकुन्द-राम जी और गोपाललाल जी के रास के दर्शन किए, यहाँ मित्रों की महफिल का निमंत्रण था, मंदिर से सीधे यहाँ आना पड़ा। वहाँ जाता भी तो वे भी गोपालमंदिर से नहीं लौटी थीं। कभी हमारे कुटुम्ब के बनाए हुए गोपालमंदिर के उस नक्कारखाने पर बैठती थीं जो पिता जी के जन्म के समय बनाया गया था और कभी उस नक्कारखाने पर जो मेरे जन्म के समय बनाया था।

माधवी

ओह! कितने..(कितने बार समझाऊँ, आपको। अब वे भूख और नींद को तिलाञ्जलि दे बैठी रहेंगी रातभर आपकी प्रतीक्षा में, क्योंकि आप तो बिना भैरवी सुने महफिल से उठने वाले हैं नहीं।)

मल्लिका

मुझे तो जब भी पूजनीया मन्नोदेवी जी का स्मरण आता है, अपना सारा सुख विस्मृत हो जाता है।

माधवी

और मुझे भी जब कभी वे याद आती हैं, मेरा कलेजा भी मुंह को आता है।

हरिश्चन्द्र

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) मेरे जीवन की यही तो सबसे बड़ी 'ट्रेजडी' है। तुम लोग समझती हो मुझे उनके संबंध में दुःख नहीं है। पर करूँ क्या? बात मेरे हाथ की नहीं है। मैं····मैं···जानती हो।

माधवी और मल्लिका

(दोनों एक साथ) क्या?

हरिश्चन्द्र

प्रेम का प्रादुर्भाव प्रयत्न से नहीं किया जा सकता। मैं अपने को

पतित और उन्हें पावन मान उनका पूजन कर सकता हूँ, पर···पर प्रेम तो तुम दोनों से ही। (**पान खाते हैं।**)

[**कुछ लोगों की आने की आहट।**]

हरिश्चन्द्र

(**माधवी और मल्लिका से**) अब मेहमानों के आने का समय हो रहा है। मैं समझता हूं तुम लोग अब अन्दर जाओ।

[**माधवी और मल्लिका का मकान की ओर प्रस्थान। दूसरी ओर से मेहमानों का प्रवेश। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं। हरिश्चन्द्र मेहमानों का स्वागत करते हैं और सबों को गद्दी पर बिठाते हैं। पेशवाज पहने हुए एक नर्तकी का प्रवेश। इसके साथ एक तबलची, दो सारंगीवाले और एक मजीरावाला है। नर्तकी सबका आदाब बजाती है।**]

नर्तकी

शरद् पूनों मुबारिक हो।

कुछ व्यक्ति

(**एक साथ हरिश्चन्द्र से**) हम सबकी ओर से भी शरद् पूर्णिमा की बधाई।

हरिश्चन्द्र

धन्यवाद। मेरी ओर से भी बधाई और मुबारिकबाद।

[**अब नर्तकी का नाच आरम्भ होता है। नाच के बीच में कभी-कभी दर्शकों की वाह-वाह। इस पर नर्तकी की आदाबें। नाच समाप्त होने पर नर्तकी आदाब बजाकर बैठ जाती है। वाद्य-वादक भी अपने वाद्यों को एक ओर हटाकर चुपचाप बैठ जाते हैं। कुछ देर स्वाभाविक विश्राम होता है। नर्तकी और उसके साथियों को पान दिए जाते हैं। वाद्य-वादक बैठक अपना साज फिर मिलाते हैं और कुछ देर बाद एक पक्का गाना**

"तूम त नाना ते लेना तुम नादिर दाना" छिड़ता है। इसके साथ सरगम और आलापों की भरमार तथा बीच-बीच मे वाह-वाह की ध्वनि चलती है।]

एक व्यक्ति

(गान पूर्ण होने पर) इसमें सन्देह नही कि तिल्लाना आपने खूब ही गाया किन्तु तिल्लाना मुझे सदा चिल्लाने से भी बुरा ज्ञात होता है। कोई चलती चीज़ हो।

नर्तकी

(कुछ नाक-भौं सिकोड़कर) तो आप ही फरमायश कीजिये जो कहेंगे गा दूँगी।

वही व्यक्ति

(कुछ बगलें सी झाँकते हुए अपने पास बैठे हुए एक दूसरे महाशय से) कहिए क्या फरमायश की जाय ?

एक संगीतज्ञ

चलती चीज तो होगी ही लेकिन ऐसी चीज़ों के भी कद्रदाँ होने चाहिएं। बाई जी ने हम्मीर की कैसी अलापें ली है, मध्यम को किस सफाई से बचाया है, मानो राग का चित्र ही खड़ा कर दिया हो।

एक अन्य व्यक्ति

वल्लाह, वल्लाह।

[नर्तकी आदाब बजाती है।]

वह व्यक्ति जिसने पहले चलती चीज़ गाने को कहा था

(सिर खुजलाते हुए) अच्छा तो फिर आसावरी छेड़िए।

[रात्रि को आसावरी छेड़ने की माँग पर सब लोगों का अट्टहास।]

हरिश्चन्द्र

आपने तो भोर ही कर दिया।

एक मेहमान

वाई जी ! (**हरिश्चन्द्र की ओर संकेत कर**) बबुआ जी का ही कोई गीत गाइये न !

नर्तकी

(**कुछ याद-सा करते हुए**) बहुत खूब। (**गाना आरम्भ करती है।**)

आज तोहिं मिल्यो गोरी कुंजन पियरवा ।
काहे बोलें झूठे बैन कहे देत तेरे नैन,
देखु न बिथुरि रहे मुख पर बरवा ।
अँगिया के बंद टूटे कर सों कँकन छूटे,
अपने पीतम जी के लागी है तू गरवा ।
हरीचन्द लाज मेटी गाढ़े भुज भर भेंटी ॥
द्वै-द्वै के उपटि भये चार-चार हरवा ।

हरिश्चन्द्र

आप लोग एक बात जानते हैं ?

कुछ व्यक्ति

(**एक साथ**) कौन-सी ?

हरिश्चन्द्र

(**नर्तकी की ओर संकेत कर**) हम सब इन सभों का सहवास किस लिए रखते हैं ?

कुछ व्यक्ति

किस लिए ?

हरिश्चन्द्र

इसलिए कि यदि हम यह सत्संग न रखें तो कविता के लिए भाव कहाँ से सूझें ।

[अट्टहास]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान में उनका बैठकखाना

समय

तीसरा पहर

[यह वही कक्ष है जो पहले अंक के दूसरे दृश्य मे था । गोकुलचन्द्र का राय नृसिंहदास और एक वकील के साथ प्रवेश । गोकुलचन्द्र युवक हैं, रंग गेहुँआ, हरिश्चन्द्र से कुछ नाटे, आकृति सुन्दर । छोटी-छोटी मूँछें हैं । कुरता-धोती धारण किये हैं । राय नृसिंहदास लगभग ५१ वर्ष की अवस्था के, गोरे रंग के, औसत कद के व्यक्ति हैं । बड़ी-बड़ी मूँछें हैं जिससे उनका चेहरा बड़ा रबंग दिखायी देता है । अँगरखा और ढीला पाजामा पहने हैं । वकील भी प्रौढ़ हैं, वेषभूषा पश्चिमी । वकील के हाथ में कुछ लिपटे हुए कागज हैं ।]

गोकुलचन्द्र

(चारों ओर देखकर) अभी तक तो आये नहीं हैं, यद्यपि समय आने का हो गया है । (वकील से) वकील साहब, आपको तो और कोई आवश्यक काम नहीं है ?

वकील

नहीं, नहीं, मैं आज अवकाश से आया हूँ । जानता था कि कदाचित यहाँ देर लग जाय, इसीलिए और कोई काम नहीं रखा ।

राय नृसिंहदास

आते ही होंगे, बैठें हम लोग ।

[तीनों गद्दी पर बैठ जाते हैं ।]

गोकुलचन्द्र

मै तो बुला लाता, परन्तु आजकल साहित्य-सेवा कुछ ऐसी जोरों पर है कि कमरे मे किसी को जाने की आज्ञा नही है।

वकील

भई, साहित्य-सेवा में एकाग्रता की आवश्यकता होती है।

गोकुलचन्द्र

पर अति तो कभी अच्छी नही होती। घर की जो दशा हो गयी है, वह तो आप लोगो से छिपी नही है। एक ओर साहित्य-सेवा न रुपये लग रहे है, दूसरी ओर दीन-दुखियों की सहायता मे, तीसरे देशोपकारक कामो के चदे मे, चौथे प्राचीन रीति के कार्यों मे और पाचवे यौवनावस्था के आनन्द-विहारो मे।

वकील

यह तो गोकुलचन्द्र जी आपने घर की रक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा किया कि बंटवारा करा लिया। कम-से-कम आधी पुश्तैनी जायदाद तो बच जायगी।

गोकुलचन्द्र

मुझे छाती पर पत्थर नही पहाड रखकर बंटवारे का यह प्रस्ताव करना पडा क्योकि 'घर फूँक तमाशा देख' वाली कहावत तो मै चरितार्थ न करना चाहता था। (**कुछ रुककर**) अभी भी देखिए तक्सीमनामे पर हस्ताक्षर हो जायँ।

राय नृसिहदास

यह गोकुल बाबू तुम क्या कहते हो? हरिश्चन्द्र मे और और कैसे हो दोष क्यों न हो, पर वैसा उदार और सत्यवादी आदमी तो देखा और सुना क्या, कही पढा भी नही है। तुम जानते हो, वह तो सारी पैतृक सम्पत्ति के निज भाग की दस्तबरदारी लिखने को तैयार था, पर ऐसा करना अनुचित समझ मैने ही तक्सीमनामा कराना उचित समझा। तुम समझते हो कि वह कहकर मुकर जायगा और तक्सीमनामे पर हस्ताक्षर न करेगा?

[नेपथ्य म हरिश्चन्द्र का गान सुन पड़ता है । सब लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है।]

जिनके देव गुवरधन-धारी,
ते औरहि क्यौं मानै हो ।
निरभय सदा रहत इनके बल,
जगतहिं तृन करि जानै हो ॥
देवी देव नाग नर मुनि बहु,
तिनहिं नाहिं डर मानै हो ।
हरीचन्द गरजत निधरक नित,
कृष्ण कृष्ण बल सानै हो ॥

गोकुलचन्द्र

जान पड़ता है एक नया पद पूरा कर रहे थे, उसी को अब गा रहे हैं। इसीलिए आने में देर हुई।

वकील

भई, कविता तो उनकी कमाल की होती है ।

[हरिश्चन्द्र का हाथ में पान की डिब्बी लिए और पान चबाते हुए प्रवेश। हरिश्चन्द्र को देख गोकुलचन्द्र और वकील खड़े होकर हरिश्चन्द्र का अभिवादन करते हैं। हरिश्चन्द्र राय नृसिंहदास का अभिवादन करते हैं। राय नृसिंहदास उन्हें आशीष देते हैं।]

हरिश्चन्द्र

अच्छा, आ गये आप लोग ! बहुत देर हुई ?

वकील

नहीं, नहीं। अभी आये हैं।

हरिश्चन्द्र

बैठिए, बैठिए ।

[चारों गद्दी पर बैठ जाते हैं।]

राय नृसिंहदास

आजकल कोई नयी रचना चल रही है ?

हरिश्चन्द्र

हाँ, फूफाजी, श्रीचन्द्रावली नाटिका लिख रहा हूँ। प्रेम-रस में सराबोर। (**पान की डिब्बी खोल तीनों को बारी-बारी से पान देते हैं।**)

[कुछ देर निःस्तब्धता]

हरिश्चन्द्र

(**वकील के हाथ के कागज देखकर**) अच्छा, आप तक्सीमनामा ले आये !

वकील

जी हाँ, सब तैयार है। आपके और बाबू गोकुलचन्द्र जी के हस्ताक्षर भर होना है।

हरिश्चन्द्र

मैं तो अपने भाग की दस्तबरदारी ही लिखने को तैयार था, पर फूफाजी ने यह उचित नहीं समझा।

राय नृसिंहदास

बिल्कुल अनुचित था। मैं इस प्रकार की अनुचित बात कैसे होने देता ? पैतृक सम्पत्ति में तुम्हारा उतना ही अधिकार है जितना बाबू गोकुलचन्द्र जी का।

हरिश्चन्द्र

(**वकील से**) लाइये वकील साहब ! हस्ताक्षर कर दूँ।

[वकील अपने हाथ के लिपटे हुए कागज को खोलता है, स्टाम्प पर लिखी हुई दस्तावेज है, हरिश्चन्द्र कागज के अन्त में हस्ताक्षर करने को कलम उठा दावात में डुबोते हैं।]

वकील

आप पहले पढ़ तो लीजिये।

हरिश्चन्द्र

पढ़ना क्या है ! मैंने कहा न मैं तो अपने भाग की कुल सम्पत्ति की दस्तवरदारी लिखना चाहता था। यह तो तक्सीमनामा है। राय नृसिंह-दास जी ने सारी जायदाद हिसाब से ही बाँटी होगी।

राय नृसिंहदास

पर इतने पर भी तुम पढ तो लो।

हरिश्चन्द्र

(हस्ताक्षर करते हुए) समय को निरर्थक क्यों व्यय किया जाय। **(हस्ताक्षर कर गोकुलचन्द्र को देते हुए)** लो गोकुल अब तुम्हें दस्तखत करना है। तुमने तो इसे पढ लिया है न ?

गोकुलचन्द्र

(कागज लेते हुए) हाँ, भाई साहब, आपका समय और निरर्थक न जाय इसलिए मैं तो इसे पढ़कर ही आया था। तीन बराबरी के हिस्से हैं— एक ठाकुर जी का, एक आपका और एक मेरा। **(हस्ताक्षर करते हैं।)**

राय नृसिंहदास

अब गवाह रह गए, वकील साहब और मैं गवाह की हैसियत से हस्ताक्षर कर देते हैं।

[गोकुलचन्द्र कागज राय नृसिंहदास को देता है, पहले राय नृसिंहदास और उनके पश्चात् वकील गवाहों के रूप में हस्ताक्षर करते हैं।]

वकील

कल इसकी रजिस्ट्री हो जायगी।

[कुछ देर निस्तब्धता]

राय नृसिंहदास

(हरिश्चन्द्र से) बबुआ ! आज का दिन मुझे देखने को मिलेगा यह मैं सोच ही नहीं सकता था, किन्तु....किन्तु....

हरिश्चन्द्र

किन्तु, परन्तु कुछ नही, फूफाजी! भगवान जो कुछ करते है, अच्छे के लिए करते है। चाँदी-सोने के टुकडे, चूने-पत्थर के मकान और मिट्टी के खेत ही तो बँटे है न? सब निर्जीव वस्तुएं। मेरा और गोकुल का स्नेह इससे और बढेगा, क्योकि ये निर्जीव वस्तुए अब हम दोनो के सजीव स्नेह के बीच दीवारे बनकर खडी न होगी।

[गोकुलचन्द्र हरिश्चन्द्र के पैर पकड़ लेता है।]

हरिश्चन्द्र

(**गोकुलचन्द्र के** सिर पर हाथ रखकर) सुखी रहो गोकुल! युग युग जियो। किसी प्रकार की चिंता न रखना। आज के पश्चात् मेरा स्नेह तुम पर और बढ जायगा।

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान मे मन्नोदेवी का कमरा

समय

उषाकाल

[कमरा वही है जो पहले अंक के तीसरे दृश्य मे था। विद्यावती अपने पलंग पर सो रही है। मन्नोदेवी अपने पलंग पर लेटी हुई बेचैनी से करवटे बदल रही है। पलंग के नीचे हिरिया निद्रा मे निमग्न है। मन्नोदेवी पलंग पर से उठ कुछ चपलता से इधर-उधर टहलने लगती है, फिर पीछे की दीवाल मे लगे हुए श्रीनाथ जी के चित्र के सामने जा कुछ देर खड़े-खड़े उस चित्र को देखती रहती है। इसके पश्चात् यमुना जी के चित्र के सामने जा कुछ देर उसे देखती है, फिर कुछ देर इधर-उधर टहल विद्यावती के पलंग के पास जा उसके चेहरे पर का वस्त्र धीरे से हटा

उसका चेहरा देखती रहती है। फिर से उद्विग्नता से इधर-उधर टहलती हैं और अंत में हिरिया के पास जा उसे जोर से पुकारती है।]

मन्नोदेवी

हिरिया, ओ हिरिया।

[हिरिया चौंककर उठती है और सकपकाकर इधर-उधर देखती है।]

हिरिया

(सामने मन्नोदेवी को देख) क्यों मालिक अब तक नहीं आये ?

मन्नोदेवी

नहीं।

हिरिया

आपको नींद भी नही आयी ?

मन्नोदेवी

नही।

हिरिया

आधी रात के बाद तो आप पलंग पर लेटी थीं।

मन्नोदेवी

अब तो दिन निकलने का समय हो रहा है।

हिरिया

(आश्चर्य से) दिन निकलने का समय ?

मन्नोदेवी

हाँ, हिरिया, दिन निकलने में थोड़ी ही देर होगी।

हिरिया

और रातभर आप जागती रहीं ?

मन्नोदेवी

नींद के लिए बहुत कोशिश की हिरिया, पर जान पड़ता है कि उसका और मेरा तो सदा को ही साथ छूट गया है।

हिरिया

ओह !

[मन्नोदेवी गद्दी पर बैठती है, हिरिया उनके निकट गद्दी के नीचे बैठती है। कुछ देर निःस्तब्धता।]

मन्नोदेवी

तुमने क्या नाम बताया उन दोनों लड़कों के ? माधवी और मल्लिका ?

हिरिया

हां, मालकिन । एक का नाम है माधवी और दूसरी का मल्लिका।

मन्नोदेवी

और पहले इस माधवी का नाम अलीजान था ?

हिरिया

हां, सुना तो यही है।

मन्नोदेवी

तो यह मुसलमान थी ?

हिरिया

अलीजान नाम तो मुसलमानी ही है, मालकिन।

मन्नोदेवी

इसे हिन्दू बनाया है ?

हिरिया

यही सुनते हैं।

मन्नोदेवी

(क्रोध से) जिस तरह गधा घोड़ा नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह मुसलमान कहीं हिन्दू बनाया जा सकता है ?

हिरिया

पर मालिक ने तो उसे हिन्दू बना ही डाला है।

मन्नोदेवी

और सुंडिया मुहल्ले में उसके लिए एक मकान खरीदा है ?

हिरिया

जी हाँ, वह मकान तो मैं देख आयी हूँ, उसमें ठाकुर जी भी पधराये गये हैं।

मन्नोदेवी

(और भी क्रोध से) मुसलमान नर्तकी हिन्दू बनायी गयी है, उसके लिए मकान खरीदा गया है और वहाँ ठाकुर जी पधराये गये हैं। गजब हो गया अब तो गजब ! (दीर्घ निःश्वास छोड़ती है।)

[कुछ देर निस्तब्धता]

मन्नोदेवी

और यह मल्लिका कौन है ?

हिरिया

सुना जाता है यह कोई बंगाली विधवा है। यहाँ आकर पहले अपने चौखंभा वाले मकान से लगे हुए खदेरूमल की गली के एक मकान में बसी थी।

मन्नोदेवी

तो वहीं से गटपट शुरू हुई होगी ?

हिरिया

सुना तो यही जाता है।

मन्नोदेवी

एक मुसलमान नर्तकी, दूसरी विधवा। हे भगवान !

हिरिया

एक बात और सुनी है, मालकिन।

मन्नोदेवी

क्या ?

हिरिया

यह मल्लिका बड़ी भारी लेखिका और कवयित्री है। इसने बंगला के कई उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया है। और चन्द्रिका नाम से कविता करती है।

मन्नोदेवी

भाड़ में पड़े ऐसा लेखन और कविता। (**फिर दीर्घ निःश्वास छोड़ती है।**)

[कुछ देर निस्तब्धता।]

मन्नोदेवी

हिरिया, पहले तो कभी-कभी कान में भनक पड़ जाती थी कि दाल-मण्डी से फलाँ-फलाँ आयी है। गदाकश महफिलें हो जाया करती थीं। आरम्भ हुआ यह सारा धन्धा स्त्री-जगेर की इन दूकानों से और अब तो एक नहीं दो-दो को रख ही लिया गया।

हिरिया

हाँ, शुरू तो इसी तरह हुआ था, मालकिन।

मन्नोदेवी

हिरिया, ये अइयाश इन नर्तकियों को मंगलमुखी कहा करते हैं। और भी इसी तरह के न जाने कितने शुभ नामों से पुकारते हैं। नर्तकियों के इन प्रेमियों के सामने नर्तकी-नृत्य के विरुद्ध यदि कुछ कहा जाता है तो तत्काल उत्तर मिलता है कि मंगल अवसरों पर यदि मंगलमुखियों का नाच-गाना न हो तो क्या रोना-धोना छाती पीटना हो?)

हिरिया

हाँ, कहते तो यही हैं।

मन्नोदेवी

(और ब्याह, शादी, जन्म, उत्सव आदि के मौके पर ही इस तरह की

महफिलें हुआ करती हैं, यह नहीं; अनेक धार्मिक अवसरों पर भी इन नर्तकियों का नाच कराया जाता है।

हिरिया

हां, मालकिन, दशहरे की दुर्गापूजा के समय काशी में ही।

मन्नोदेवी

फिर इन महफिलों में शराब पिया जाता है। भद्दी से भद्दी हंसी-दिल्लगी की जाती है।

हिरिया

वह भी बराबरी की उम्र वालों के रहते हुए ही नहीं, बाप-बेटे, दादा-पोतों के साथ-साथ बैठे रहने पर भी।

मन्नोदेवी

और इस सब कुत्सित लीला को देखती रहती हैं छतों, छज्जों, दहलानों आदि में बैठी हुई हमारी सती, साध्वी, पतिपरायणा स्त्रियाँ तक।

हिरिया

होना तो यही है, मालकिन।

मन्नोदेवी

मानव-समाज ने स्त्री-शरीर की यह दूकानदारी, नर्तकी-संस्था की स्थापना से बड़ा कदाचित् कोई पाप नहीं किया, और इस संस्था को नाच-गाना की कला सौंपना उस कला के प्रति घोर अन्याय से बड़ा कदाचित् कोई अन्याय नहीं। इस सभ्य कहलाने वाले मानव-समाज में नर्तकी-प्रथा अब तक कानूनन जायज है। इससे बड़ी आश्चर्य की शायद कोई बात नहीं हो सकती।

हिरिया

और हमारी पवित्र काशीपुरी तो इसके लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है।

मन्नोदेवी

न जाने कितने घर इस संस्था ने चौपट किये, कितने कर रही है और कितने करेगी। अपने ही घर को ले लो। इसी फिजूलखर्ची के कारण

घर की जायदाद का बँटवारा हुआ। दिनों-दिन अधिकाधिक बरबादी होती जा रही है। एक ओर घर पर आर्थिक आपत्तियों की घटनाएँ घिर रही हैं, ऋण के ओले पड़ रहे हैं, और दूसरी ओर ये नर्तकियाँ माधवी और मल्लिका।

[नेपथ्य मे हरिश्चन्द्र के गान की ध्वनि सुन पड़ती है।]

सखी री ये अखियाँ रिझवारि।
देखत ही मोहन सों रीझी सब कुलकानि बिसारि॥
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों झुक न सकीं सम्हारि।
सुन्दर रूप विलोकत रपटीं काँचे घट जिमि वारि॥
अब बिनु मिले होत हैं व्याकुल रोअत निलज पुकारि।
अपुने फल करि हमहिं कनौड़ी और दियावत गारि॥
लोक-लाज कुल की मरजादा तृन-सम तजी बिचारि।
हरीचन्द इनको को रोके बिगरीं जगहिं बिगारि॥

मन्नोदेवी

लो, आ गये ! भगवान के गुणानुवाद गाये जा रहे हैं।

[हरिश्चन्द्र का पान चबाते हुए प्रवेश। हिरिया का प्रस्थान।]

हरिश्चन्द्र

(**मन्नोदेवी से**) क्षमा करना, आज मुझे सचमुच बहुत देर हो गयी।

मन्नोदेवी

कहाँ से आ रहे हो ? माधवी के यहाँ से या मल्लिका के ?

[हरिश्चन्द्र कुछ नहीं बोलते। चुपचाप गद्दी पर बैठ जाते हैं और पान चबाते रहते हैं। कुछ देर एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता।]

मन्नोदेवी

(**दीर्घ निःश्वास छोड़कर**) यह...यह क्या सुन रही हूँ नाथ ! एक मुसलमान, अलीजान नर्तकी को हिन्दू बनाया है, दिन दूना और रात चौगुना कर्ज़ बढ़ते हुए भी सुंडिया मुहल्ले में उसके लिए एक मकान

खरीदा है, उस मकान मे ठाकुर जी की सेवा पधरायी है । एक विधवा बंगालन मल्लिका को रखा है।

[हरिश्चन्द्र फिर भी कुछ उत्तर नहीं देते । सिर झुका लेते हैं। मन्नोदेवी उनकी ओर देखती रहती हैं । कुछ देर फिर निस्तब्धता ।]

मन्नोदेवी

यह सब झूठ है या सच ?

[हरिश्चन्द्र फिर भी कुछ नहीं बोलते ।]

मन्नोदेवी

कोई उत्तर न दोगे ?

[हरिश्चन्द्र फिर भी चुप ।]

मन्नोदेवी

एक ओर भगवत्-कीर्त्तन होता है, नवधा प्रकार की भक्ति से भगवत्-सेवा होती है, दूसरी ओर ये सारे दुष्कर्म किए जाते हैं । कभी सुना था मोक्ष के लिए पाप और पुण्य के पलड़े बराबर होना आवश्यक होता है। इसीलिए यह सब हो रहा है ?

[हरिश्चन्द्र जोर से हंस पड़ते हैं पर कुछ बोलते नहीं । जेब मे से पान की डिब्बी निकाल दो पान और खा लेते हैं । फिर कुछ देर निस्तब्धता ।]

मन्नोदेवी

मुझे कुछ जानने का भी अधिकार है या वह भी नही है ? विवाह के समय हम दोनों ने एक दूसरे के सबध मे कुछ प्रतिज्ञाएँ की थी !याद है ?

हरिश्चन्द्र

विवाह के समय मेरी अवस्था तेरह वर्ष की थी । ब्राह्मणों ने जो कुछ कहलाया तोते के सदृश पढ़ दिया था।

मन्नोदेवी

किसी तरह आप बोले तो ! खैर छोड़िये उन प्रतिज्ञाओं को। इतना

ही बना दीजिये कि माधवी और मल्लिका के संबंध में मैंने जो सुना है, वह ठीक है या नहीं ?

[हरिश्चन्द्र कोई उत्तर न दे फिर चुप रहते हैं।]

मन्नोदेवी

मैं मान लूं चुप रहने का अर्थ स्वीकार करना ?

हरिश्चन्द्र

हां, संस्कृत में कहा ही है 'मौनं स्वीकृतिलक्षणम्' और उर्दू में 'खामोशी जुर्म का इकबाल है।'

मन्नोदेवी

(**दीर्घ निःश्वास छोड़कर**) फिर ?

हरिश्चन्द्र

फिर क्या कहूँ ! तुम्हारे सामने झूठ बोलकर तो अपने पापों का बोझ और न बढ़ाऊंगा। याद नही है एक बार तुमसे कहा था मै पतित हूँ तुम पावन। मेरे पाप दिन पर दिन बढ़ते जाते है। पर अब इन पापों के मोचन के लिए एक...एक और अनुष्ठान आरम्भ करूँगा। भगवत्-सेवा के साथ तुम्हारा पूजन ! मन्नो ! प्रेम...प्रेम एक ऐसी वस्तु है जो बलात्कार कर उत्पन्न नहीं की जा सकती । परंतु....परंतु किसी...किसी पवित्र वस्तु का भक्तिपूर्वक पूजन...पूजन अवश्य किया जा सकता है ।

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र का बैठकखाना

समय

सन्ध्या

[वही कमरा है जो पहले अंक के दूसरे तथा दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में था। हरिश्चन्द्र गद्दी पर बैठे हुए पान चबाते-चबाते बड़े सपाटे से कुछ लिख रहे हैं। बीच में उस लेख को पढ़ते हैं। आज उनके आस-पास कई हस्तलिखित पुस्तकों की थप्पियाँ लगी हुई हैं। कुछ देर में एक पूरा कवित्त बन जाता है, जिसे झूम-झूम कर कहते हैं।]

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के॥

[कृष्णदेवशरणसिंह, राधाकृष्णदास, चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह और रामशंकर व्यास का प्रवेश।]

हरिश्चन्द्र

(**इन लोगों के आने की आहट पाकर खड़े हो**) अच्छा, आज तो इतने मित्रों ने इकट्ठे ही आने की कृपा कर दी।

राधाकृष्णदास

मैं तो अपने कमरे में से आ रहा था कि आप लोग इकट्ठे होकर पहुंच गये और मैं सबको ले आया।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, बैठो, बैठो!

[**सब लोग बैठते हैं। हरिश्चन्द्र भी। हरिश्चन्द्र सबको पान देते हैं।**]

कृष्णदेवशरणसिंह

साहित्य-रचना चल रही है?

हरिश्चन्द्र

आज मैंने दो कविताएँ लिखी हैं। एक उदयपुर की यात्रा पर और दूसरी अपने स्वभाव के संबंध में ही।

बदरीनारायण

अच्छा, सुनाइये, तत्काल सुनाइये।

जगमोहनसिंह

अवश्य, बिना देरी के।

प्रतापनारायण

हाँ, बिना बिलम्ब के।

रामशंकर

नेकी और पूछ-पूछ।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, पहले स्वभाव संबंधी सुनिये। (**पढ़ते हैं।**)

सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के॥

बदरीनारायण

सुन्दर।

प्रतापनारायण

अत्यन्त सुन्दर। 'नगद दमाद अभिमानी के' क्या ही सुन्दर लिखा है!

जगमोहनसिंह

और 'सीधेन सों सीधे महा बाँके हम बाँकेन सों।' वाह, वाह।

रामशंकर

आपके स्वभाव का आपने सच्चा वर्णन किया है।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, अब सुनिये उदयपुर की यात्रा वाली। (**पढ़ते हैं।**)

नहिं विद्या नहिं बाहुबल नहिं खर्चन को दाम।
श्री गणेश बिन शुंड के तिन को कोटि प्रनाम॥
हिलत डुलत चलत गाडी आवे।
झुलत सिर, टुटत रीढ़, कमर झोंका खावे।
टख टख टिख हचर मचर शिप खस धस चें चूं चूं टन।
टिन-टिन हड़ड़ हड़ड़ घड़ घड़ घिड़ावें॥

[राय कृष्णदेवशरणसिंह और राधाकृष्णदास जोर से हँस पड़ते हैं।]

रामशंकर

(हँसते हुए) वाह रे गणेश गाड़ीवान और उसकी बैलगाड़ी !

जगमोहनसिंह

(**हँसते हुए**) हिन्दी में तो अब तक ऐसी व्यंग्योक्ति शायद ही किसी ने लिखी हो।

बदरीनारायण

शायद ? मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, किसी ने नहीं लिखी।

प्रतापनारायण

हाँ, मैंने भी कहीं ऐसी व्यंग्योक्ति नहीं पढ़ी।

हरिश्चन्द्र

जरा इनकी कापी कर डालता हूँ। (**बड़ी तेजी से लिखते हैं।**)

कृष्णदेवशरणसिंह

क्या सपाटे से हाथ चलता है, जैसे कोई कल हो।

बदरीनारायण

इसीलिए तो प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा० राजेन्द्रलाल मित्र के सदृश व्यक्ति भी इन्हें 'राइटिंग मशीन' कहते हैं।

जगमोहनसिंह

(**इधर-उधर रखी हुई पुस्तकों की थप्पियों को देखकर**) अच्छा, आज ये सब पाण्डुलिपियाँ क्यों इकट्ठी की गयी हैं ?

हरिश्चन्द्र

(**लिखते-लिखते ही**) अपने लिखे हुए सारे साहित्य की पाण्डुलिपियाँ एक बार इकट्ठी करना चाहता था, वह मैंने आज कर डाला।

रामशंकर

(**राधाकृष्णदास से**) और देखो तो ये इतने सपाटे से लिखते भी जाते हैं और बातें भी करते जाते हैं।

राधाकृष्णदास

ये अनेक कार्य साथ-साथ कर सकते हैं।

हरिश्चन्द्र

(**लिखना पूर्ण कर, दो पान खा एक थप्पी को उठाकर**) ये देखिये, ये सारे मौलिक नाटक हैं—(१) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (२) सत्य हरिश्चन्द्र (३) श्रीचन्द्रावली, (४) विषस्य विषमौषधम्, (५) भारत-दुर्दशा, (६) नीलदेवी, (७) अन्धेर नगरी। (**इस थप्पी को बदरीनारायण को देते हुए दूसरी थप्पी उठा**) ये अनुवादित नाटक हैं—(१) विद्या-सुन्दर, (२) पाखण्ड-विडम्बन, (३) धनञ्जय-विजय, (४) कर्पूर-मंजरी, (५) मुद्रा-राक्षस। (**इस थप्पी को जगमोहनसिंह को देते हैं।**)

[दोनों थप्पियों को उलटते-पलटते हैं। फिर प्रतापनारायण, रामशंकर और कृष्णदेवशरणसिंह भी इन थप्पियों को उलटते-पलटते हैं।]

बदरीनारायण

आप कभी अपनी लिखी हुई चीज को दुहराते नहीं। यदि यह भी किसी तरह कर लिया करते।

हरिश्चन्द्र

(**बदरीनारायण की बात को सुनी-अनसुनी कर**) याद है न, कुछ वर्ष पहले मैंने आप लोगों से एक बात कही थी?

सब

(**एक साथ**) क्या?

हरिश्चन्द्र

यह कि मेरे साहित्य-सृजन का मुख्य माध्यम नाटक होगा।

कृष्णदेवशरणसिंह

अच्छी तरह याद है।

बदरीनारायण और प्रतापनारायण

(**एक साथ**) हमें भी याद है।

जगमोहनसिंह

मुझे भी आपने एक बार कहा था।

रामशंकर

और मुझे भी।

राधाकृष्णदास

और ये नाटक हैं उस निर्णय के फल।

हरिश्चन्द्र

शेष थप्पियों मे (**थप्पियों को देखते हुए**) एक है श्रव्य काव्यों की, दूसरी आख्यायिकाओं की, तीसरी स्तोत्रों की, चौथी स्फुट लेखों की इत्यादि।

बदरीनारायण

सब मिलकर छोटे-बड़े इन सब ग्रन्थों की संख्या अब कितनी हो गयी होगी ?

हरिश्चन्द्र

मैं समझता हूँ, दो सौ के ऊपर।

राधाकृष्णदास

फिर पत्र भी कितने निकल रहे हैं ? कवि-वचन-सुधा, हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, बालाबोधिनी।

प्रतापनारायण

कितनी आतुरता से लोग प्रतीक्षा किया करते हैं, इन पत्रों की।

राधाकृष्णदास

संस्थाएँ भी कम स्थापित नहीं की गयी हैं। चौखंभा स्कूल, कविता-वर्धिनी सभा, यंग मेन्स एसोशियेशन, पैनी रीडिंग क्लब, तदीय समाज इत्यादि।

जगमोहनसिंह

और भी कितनी नयी-नयी बातें कर रहे हैं आप ? प्रतिवर्ष

नये ढंग की नोट-बुक छपवाकर मित्रों में बाँटते हैं, जिस पर लिखा रहता है, 'फोरगेट मी नॉट'।

बदरीनारायण

और ग्रहों के रंगों के अनुसार हर वार को पत्र लिखने के लए ढग के कागज छपाये है। रविवार का गुलाबी, सोमवार का श्वेत, मंगल का लाल, बुध का हरा, गुरु का पीला, शुक्र का सफेद और शनि का नीला।

प्रतापनारायण

सर्वथा नयी खोज।

राधाकृष्णदास

और परिहास भी कितने नये-नये ढंग के होते हैं। पहली अप्रैल को 'फूल्स डे' के, होली के।

कृष्णदेवशरणसिंह

फिर, आप इन परिहासों में स्वयं अपने को परिहास का एक कारण बना स्वयं अपने पर हँसते और अपने पर ही दूसरों को हँसाते हैं।

बदरीनारायण

अपने पर दूसरों को हंसाने का साहस कदाचित् विरल व्यक्ति ही कर सकते ह।

जगमोहनसिंह

मैं तो जगन्नाथ जी की फूल की टोपी वाली घटना को कभी भूल ही न सकूंगा। वह टोपी इतनी बड़ी होती है कि एक आदमी उसमें छिप सकता है। बच्चा बाबू, आप तो उस दिन थे नहीं, इन्होंने गोकुल बाबू से कह लोगों को यह कहलाकर इकट्ठा कराया कि जगन्नाथ जी का प्रत्यक्ष चमत्कार देखो, वह टोपी स्वयं चलेगी। खुद घुस गये उस टोपी में और जब चलने लगे, तब टोपी चलने लगी। दर्शक आश्चर्यचकित रह गये और उनका आश्चर्य तब मिटा जब सबके सामने ही ये उस टोपी से बाहर निकल आये। फिर तो ऐसा मजाक हुआ कि क्या कहूँ।

कृष्णदेवशरणसिंह

और मैं इनकी बाल्यकाल की फासफरम से दीवालों पर बनायी जाने वाली डरावनी मूर्त्तिया नही भूल सकता। इन मूर्त्तियों मे ये स्वय अपनी मूर्त्ति भी बनाया करते थे और किस तरह डराते थे लोगो को रात में।

हरिश्चन्द्र

मैंने आपसे कहा था न कि इस देश में रिनासान्स करना है और वह धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में। उसी का आप मित्रों की सहायता से अनेक मार्गो द्वारा थोडा-बहुत प्रयत्न कर रहा हूँ। (**फिर पान खाते हैं।**)

रामशंकर

और अब तो सारा देश इन सब कार्यो से प्रभावित है।

हरिश्चन्द्र

परन्तु, सारे देश पर इन कार्यो का जो भी प्रभाव पड़ रहा हो, राजा शिवप्रसाद जी इन दिनों मुझ पर बहुत अप्रसन्न हैं।

कृष्णदेवशरणसिंह

उनके मन में कुछ गलतफ़हमी हो गई है।

हरिश्चन्द्र

मुझे इसका बड़ा दुःख रहता है क्योंकि आप जानते हैं मैंने उनसे अंग्रेजी पढ़ी है और मैं उन्हें अपना गुरु मानता हूँ।

[कुछ देर निस्तब्धता]

कृष्णदेवशरणसिंह

ये सारी आनन्ददायक बातें होते हुए भी हमें दो बातों के संबंध में अवश्य दुःख है।

हरिश्चन्द्र

जो आप लोग हमेशा कहा करते हैं, घर की आर्थिक स्थिति और मन्नो-देवी !

कृष्णदेवशरणसिंह

और जब तक इन दो बातों में सुधार न होगा, हम ये सदा कहते रहेंगे।

हरिश्चन्द्र

घर की बात तो छोड़ो, पर मन्नो के संबंध में मेरे मन में भी जो व्यथा है वह मैं कह नहीं सकता। मुझे संसार में यदि कोई दुःख है तो यही। और...और कितनी...कितनी परम...कितनी पवित्र...कितनी पावन है वह। जब उसकी ओर देख अपनी ओर देखता हूँ, तो अपने को कितना छोटा, कितना पतित, कितना घृणित पाता हूँ। उसके लिए अपने को अस्पृश्य। अब तो उसके सामने जाने में मुझे भय लगता है। उस ओर पग उठाने का भी मेरा साहस नहीं होता।

राधाकृष्णदास

आपकी उदारता.....।

[विद्यावती का प्रवेश। वह बड़ी दुबली-पतली साँवले रंग की बालिका है। चेहरा एक ओर को झुका हुआ है। अवस्था दस-बारह वर्ष।]

हरिश्चन्द्र

यह लीजिये, यह विद्या आ गयी। हाँ, बच्चा बाबू, इससे संबंध रखने वाली कविता तो सुना दो।

विद्या

फिर मैं भी इनसे संबंध रखने वाली कविता सुनाऊँगी।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, बैठ तो। दोनों सुना देना।

राधाकृष्णदास

(विद्यावती को गोद में बिठा कविता-पाठ करते हैं।)

विद्या तुम्हरे नाम पै, मूरखता की खानि।
पढ़त लिखत कछु नाहिं, तुम निज स्वरूप पहिचानि॥

विद्या विद्या नहिं पढ़ै, तो झूठो है नाम।
तासों तोहि पढ़नो उचित, छोड़ि और सब काम॥
सरस्वती की ह्वै बहिन, विद्या नाम कहाइ।
पढ़ति नहीं खेलत फिरत, नीचे ऊपर धाइ॥
विद्या तुम घूमिन भई, खात बहुत हो पान।
जात नहीं स्कूल को, बात लेति नहिं मान॥

विद्या

(खड़े हो राधाकृष्ण की ओर घूम दाहिने हाथ की तर्जनी हिलाते हुए कविता पाठ करती है।)

ककका तुम इतने बड़े ढोढ़क भये सयान।
पै कुछ भी अक्किल तुम्हें आई नहीं सुजान॥
हिन्दी की चिन्दी करी अंग्रेजी की धूर।
लगे पढ़न अब फारसी आयो कछु न सहूर॥

[सब लोग अट्टहास करते हैं। विद्यावती भाग जाती है। एक दरबान का प्रवेश। वह हाथ में कागज का एक चिट लिए हुए है, यह चिट वह हरिश्चन्द्र को देता है।]

हरिश्चन्द्र

(चिट पढ़कर उठते हुए) ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर पधारे हैं। मैं उन्हें ले आता हूँ, तब तक (राधाकृष्णदास से) बच्चा, तुम इन सब पाण्डुलिपियों को आलमारी में रख दो।

[हरिश्चन्द्र का प्रस्थान। उनके साथ राधाकृष्णदास को छोड़ शेष सब लोग जाते हैं। राधाकृष्णदास पाण्डुलिपियों को निकट की आलमारी में रख आलमारी बन्द करते हैं। हरिश्चन्द्र तथा अन्य सब लोगों का ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साथ प्रवेश। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रौढ़ अवस्था के, साधारण कद और शरीर पर धोती और चादरा, वे अपने हाथ में कुछ लिपटे हुए कागज लिए हैं। हरिश्चन्द्र राधाकृष्ण का विद्यासागर से

परिचय कराते हैं। वे विद्यासागर के चरण स्पर्श करते हैं। विद्यासागर आशीर्वाद देते हैं। सब लोग गद्दी पर बैठते हैं। हरिश्चन्द्र पान की डिब्बी खोल ईश्वरचन्द्र के सामने करते हैं।]

ईश्वरचन्द्र

काशी के ताम्बूल ! अवश्य खाऊँगा। (**दो पान खाते हैं।**)

हरिश्चन्द्र

तो कल आपने पवित्र किया इस काशीपुरी को अपने पदार्पण से ?

ईश्वरचन्द्र

काशीपुरी को मैंने पवित्र किया या स्वयं पावन हुआ इस विश्वनाथ की पुरी में आकर ?

हरिश्चन्द्र

नहीं, मैं तो यह मानता हूँ कि आप सदृश पुण्यश्लोक महानुभावों के पधारने से तीर्थ भी पवित्र होते हैं।

कृष्णदेवशरणसिंह

विद्यासागर जी, इनके इसी प्रकार के विचारों के कारण तो आजकल कुछ लोग इन्हें नास्तिक कहने लगे।

ईश्वरचन्द्र

ये ! और नास्तिक ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द और महारानी राधा की भक्ति से ये जिस प्रकार ओत-प्रोत हैं वह हम काशी से बाहर रहने वाले आप काशी-निवासियों से भी कदाचित् अधिक जानते हैं। हाँ, ये रूढ़िवादी नहीं हैं। मैं इनके इस छन्द को कभी विस्मृत ही नहीं कर पाता :—

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
विधवा ब्याह निषेध कियो व्यभिचार प्रचारयो।
रोकि विलायत गमन कूप मँडूक बनायो।

औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दुन घबराई।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय॥

मैं जो विधवा-विवाह के पक्ष मे आन्दोलन कर रहा हूं उसमें मुझे इस छन्द मे जो सहायता मिली है, वह वर्णनातीत है।

हरिश्चन्द्र

मेरे प्रति आपकी इस भावना को मैं अपने लिए आशीर्वाद मानता हूं।

ईश्वरचन्द्र

अच्छा, देखिए, इस बार मैं काशी क्यों आया हूं, इसे भी बता दूं। **(अपने हाथ के लिपटे हुए कागजों मे से एक पाण्डुलिपि निकाल)** बबुआ जी, मेरी नवरचित इस शकुन्तला को आपको समर्पित करने के लिए ही यहाँ आया हूं। **(पाण्डुलिपि दोनों हाथों से हरिश्चन्द्र को देते हैं।)**

हरिश्चन्द्र

(पाण्डुलिपि लेते हुए गद्‌गद् स्वर से) विद्यासागर जी! आपकी कृति मुझे समर्पित! **(नेत्रों में आँसू भर आते हैं पाण्डुलिपि को मस्तक पर लगा गद्दी पर रखते हुए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के चरण स्पर्श करते हैं।)**

ईश्वरचन्द्र

मेरी कृति आपको समर्पित! आप समझते हैं मैं कोई अनुचित कार्य कर रहा हूँ?

हरिश्चन्द्र

मेरी दृष्टि से सर्वथा अनुचित।

ईश्वरचन्द्र

और मेरी दृष्टि से सर्वथा उचित। इस समर्पण के लिए आज मुझे भारत में आपसे अधिक योग्य व्यक्ति और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

बदरीनारायण

यह प्रसंग देख मुझे तो जान पड़ता है, जैसे शिव विष्णु का और विष्णु शिव का अभिनन्दन कर रहे हों।

प्रतापनारायण

खूब! खूब कहा आपने।

जगमोहनसिंह

सचमुच सुन्दर उपमा है।

रामशंकर

एकदम उपयुक्त।

[दरबान एक लिफाफा लेकर आता है और उसे हरिश्चन्द्र को देता है। हरिश्चन्द्र लिफाफा लेकर खोलते हैं, और उसमें से एक चिट्ठी निकालकर पढ़ते हैं। चिट्ठी पढ़ ठठाकर हँस पड़ते हैं।]

कृष्णदेवशरण

क्यों कोई बड़ा मनोरंजक पत्र है?

हरिश्चन्द्र

(हँसते हुए) बड़ा।

ईश्वरचन्द्र

हम लोग भी सुन सकते हैं?

हरिश्चन्द्र

अवश्य, अवश्य। पत्र है माधव सम्प्रदाय के गोस्वामी श्री पं० राधाचरण जी का। वे लिखते हैं—(**पत्र पढ़ते हैं**) "आपकी हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका के लेख पढ़कर मातृभाषा तथा देश के प्रति ऐसा अनुराग और समाज-सुधार के ऐसे भाव हृदय में उत्पन्न हुए कि आपके दर्शन की अदमनीय आकांक्षा है, परन्तु पिताजी विघ्नरूप हो रहे हैं। उनसे कुछ अन्ध रुढ़िवादियों ने कहा है कि इस समय भारत में आपसे बड़ा और कोई नास्तिक नहीं, अतः

वे मुझे आपके पास कैसे जाने दे सकते है। मुझे आपके पास आये बिना चैन नही मिल सकता, परतु मुझे पिताजी से छिपकर आपके दर्शनार्थ आना होगा, यह मै आज रात्रि को उस समय करूँगा जब वे सो जायँगे। कृपया मेरे आने के पूर्व आप सोने न चले जाइयेगा। पिताजी कितने पुराने रूढि के अनुयायी है, यह आपको एक दृष्टात से ज्ञात हो जायगा। एक वार उन्होने कही छूटती बदूक का दृश्य देख लिया था, उस दृश्य के वर्णन मे भला उनके द्वारा किसी यावनी भाषा के शब्द का कैसे प्रयोग हो सकता था। देखिए, जरा उस दृश्य का पिताजी किस प्रकार वर्णन करते है। वे कहते है—"काहू नै लौह नलिका मे श्यामचूर्ण भरि कै अग्नि सस्कार कर दयौ तो भणाम् सो शब्द भयौ।"

[सब लोग बड़ी जोर से हँस पड़ते है।]

हरिश्चन्द्र

मै उत्तर भेजता हूँ कि आपके पिता जब चाहे शयन करे पर मै बिना आपसे मिले सो नही सकता।

(हरिश्चन्द्र फिर दो पान खा पत्रोत्तर लिखने लगते है।)

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान के बैठकखाने के सामने की दालान

समय

प्रात काल

[पीछे की ओर बैठकखाने की दीवाल दिखती है। दोनों ओर खम्भे है जिन पर दहलान की छत है। दहलान में कुछ बेंचे पड़ी है। इन बेंचों पर तथा दहलान की भूमि पर कई अर्थी बैठे हुए है। सबके चेहरों से ज्ञात होता है कि सभी हरिश्चन्द्र की प्रतीक्षा कर रहे है। हरिश्चन्द्र का

पान चबाते हुए प्रवेश। हरिश्चन्द्र एक दुशाला ओढ़े हुए हैं। हरिश्चन्द्र के साथ उनका एक नौकर है।]

हरिश्चन्द्र

(सबकी ओर देखकर) अच्छा, आज तो बहुत लोगों ने कृपा की है।

[हरिश्चन्द्र बारी-बारी से एक-एक से मिलते हैं।]

हरिश्चन्द्र

(एक वृद्ध व्यक्ति से) कहिये, क्या आज्ञा है ?

वृद्ध

(जो अत्यन्त कृश है, हजामत बढ़ी हुई है, चिथड़े पहने हुए है, दाहिने हाथ को बार-बार ओंठों पर ले जाते हुए) कई दिन से खाना नहीं मिला। **(दोनों हाथों को आगे कर कपड़े दिखाते हुए)** कपड़ों का यह हाल है !

हरिश्चन्द्र

(जेब में से एक बंद लिफाफा निकाल उसे देते हुए) एकान्त में खोलना।

[वह लिफाफा ले लेता है, हरिश्चन्द्र आगे बढ़ते हैं। इस वृद्ध से लिफाफा खोले बिना नहीं रहा जाता। लिफाफा खोलता है, जिसमें से कई नोट निकलते हैं। वह प्रसन्नता से जाता है।]

हरिश्चन्द्र

(एक अल्पवयस्क व्यक्ति से जो पढ़ा लिखा जान पड़ता है और बहुत निर्धन भी नहीं) तुम्हें क्या चाहिए ?

वह व्यक्ति

बहुत दूर से यह सुनकर आया था कि आप आशुकवि है, मैं भी आशु-कवि होने का दावा करता हूँ, कोई समस्या या पद पूर्त्ति दीजिये यहीं पूर्त्ति कर दूंगा।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, तो फिर तुम कवितावर्धिनी सभा में आओ।

वही व्यक्ति

यह भीख माँगने की जगह नहीं है, मुझे कुछ आवश्यकता भी तो है।

हरिश्चन्द्र

तो यों ही ले जाओ।

वही व्यक्ति

बिना समस्या या पद पूर्त्ति के नहीं लूंगा।

हरिश्चन्द्र

(**विचारते हुए**) अच्छा, पूर्ति करो इसकी—

कपड़ा जला के अपना, लगा आग तापने।

वही व्यक्ति

(**कुछ विचारने के पश्चात गुनगुनाते हुए**)

ऐसा भी बावला कहीं, देखा है आपने।
कपड़ा जला के अपना, लगा आग तापने॥

हरिश्चन्द्र

(**ठठाकर हँसते हुए उसे दस रुपये का नोट दे**) खूब, भई खूब! तुममें कवित्व शक्ति का बीज है। धीरे-धीरे अभ्यास करते रहो, कभी सुकवि हो जाओगे। कवितावर्धिनी सभा में भी आया करो।

[इस व्यक्ति का प्रस्थान, हरिश्चन्द्र आगे बढ़ते हैं।]

हरिश्चन्द्र

(**आगे बढ़ ठंड से काँपते हुए एक वृद्ध के निकट पहुँच**) अरे तुम तो काँप रहे हो? (**नौकर से**) कोई ओढ़ने की गरम चीज है?

नौकर

इस वक्त तो नहीं है, बाबूजी।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, तो यह विमुख होकर थोड़े ही जायगा! (**अपना दुशाला उतार कर उसे दे देते हैं।**)

वह व्यक्ति

(**प्रसन्नता से दुशाला लेते हुए**) जय हो, जय हो, जय हो। (**प्रस्थान**)

हरिश्चन्द्र

(**एक अधेड़ अवस्था के व्यक्ति के सामने पहुँच जो साधारणतया ठीक ढंग के कपड़े पहने था**) कहिये आप क्या चाहते हैं?

अधेड़

आपको एक कविता सुनाने आया हूँ।

हरिश्चन्द्र

बोलिए।

अधेड़

कोऊ इक पापी हर नाम न जापी,
सो मग्गह में मर गयो।
गंगा जी की बालू बरबस ले उड़ी बयार,
ताके कोटिन कोटि पाप तर गयो॥

[**हरिश्चन्द्र जेब से सौ रुपये का नोट उसे दे आगे बढ़ते हैं। उसका प्रसन्नता से प्रस्थान। गोकुलचन्द्र का नौकर की गर्दन पकड़े हुए प्रवेश।**]

गोकुलचन्द्र

भाई साहब! दीवानखाने का बड़ा शीशा जो कारनिस पर रखा हुआ है, वह अब प्रातःकाल चटका हुआ मिला। इस गधे ने कारनिस पर जलती बत्ती रख दी थी। कहिए अब इस बेवकूफ का क्या किया जाय?

हरिश्चन्द्र

(विचारते हुए) शीशा तो चटक ही चुका। इसको दण्ड देने से भी वह ठीक होने वाला तो है नहीं। फिर हर वस्तु का कभी न कभी नाश अवश्यम्भावी है। अतः इसे क्षमा ही कर दो। **(वाल्मीकि रामायण का श्लोक पढ़ते हैं।)**

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवितम्॥

[गोकुलचन्द्र उसे छोड़ देते हैं, परन्तु वे उसे घूरते रहते हैं। एक व्यक्ति का जोर-जोर से फुक्के फाड़कर रोने हुए प्रवेश। वह हरिश्चन्द्र के पैर पकड़ लेता है।]

हरिश्चन्द्र

क्या हुआ, क्या हुआ भाई?

[वह कुछ न बोलकर अपना सिर बार-बार हरिश्चन्द्र के पैरों पर पटक-पटक और जोर-जोर से रोने लगता है।]

हरिश्चन्द्र

कुछ बोलो भी तो, हुआ क्या?

वह व्यक्ति

(हिचकियाँ लेते हुए) गजब हो गया, गजब हो गया, क्या कहूँ बाबूजी!

हरिश्चन्द्र

क्या गजब हो गया, मालूम भी तो हो!

वही व्यक्ति

(उसी प्रकार रोते हुए) आपने... आपने जो बतीस हजार... **(और जोर से रोने लगता है।)**

हरिश्चन्द्र

हाँ, जो बत्तीस हजार रुपया अमानत के रूप में रखने को दिया था, वही न ?

वही व्यक्ति

(उसी प्रकार रोते हुए) वही...वही, बाबूजी, मेरे भी सर्वस्व के साथ चोरी चला गया।

हरिश्चन्द्र

चोरी चला गया ! यही गनीमत समझो कि चोर तुम्हें उठा न ल गये। जाने दो, गया सो गया।

गोकुलचन्द्र

गया सो गया ? क्या कह रहे है भाई साहब ? यह सब बदमाशी है।

हरिश्चन्द्र

भइया, बिरादरी का आदमी है। फिर गरीब है, चोर न ले गए होंगे तो यही कमा खायेगा।

वह व्यक्ति

(जोर-जोर से रोते हुए) नहीं बाबूजी, सत्य, सत्य कहता हूँ, मेरा सर्वस्व चला गया।...पुलिस में रपट कर दी है।

हरिश्चन्द्र

(अपने पैरों को छुड़ाते हुए) अच्छा, छोड़िये, मेरे पैर तो छोड़िये।

[वह व्यक्ति रोता हिचकियाँ लेता हुआ जाता है, गोकुलचन्द्र भी जाते हैं। हरिश्चन्द्र जेब से पान की डिब्बी निकाल दो पान खाकर जाने ही वाले हैं कि एक ब्राह्मण रोता-बिलखता हुआ आता है।]

हरिश्चन्द्र

(उसे देखकर) कहिए, ब्रह्मदेव आपकी क्या सेवा करूँ ?

ब्राह्मण

(**जो अधेड़ अवस्था का है और वेशभूषा तथा सिर के त्रिपुण्ड से ब्राह्मण दिखता है**) कन्या बहुत बड़ी हो गयी है, बाबूजी ! और कान्यकुब्ज हूँ।

हरिश्चन्द्र

कन्या और कान्यकुब्ज ब्राह्मण !

ब्राह्मण

क्या कहूँ, बाबूजी !

हरिश्चन्द्र

विवाह में कितना लगेगा ?

ब्राह्मण

सात सौ से कम नहीं।

हरिश्चन्द्र

(**विचारते हुए नौकर से**) देख, वे सात सौ रुपये जो कल काशी-नरेश के पास से आये हैं, तूने ही तो आलमारी में रखे हैं न ?

नौकर

जी, हाँ।

हरिश्चन्द्र

(**जेब में से चाबी निकाल नौकर को देते हुए**) ले आ उन्हें।

नौकर

(**सकपकाते हुए**) पर बाबूजी ! आप कहते थे कि वह तो उस डिग्रीदार के लिए रखा है जिसने आपकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकलवाया है !

हरिश्चन्द्र

(**डाँटकर**) तुझे क्या करना है ? देख नहीं रहा है इन ब्राह्मण देवता

का रोना-कलपना ! डिग्रीदार के लिए रुपया और कहीं से ले आऊँगा। खोल आलमारी और ला रुपये।

[नौकर चाबी लेकर जाता है।]

हरिश्चन्द्र

(ब्राह्मण से) क्यों महाराज, सात सौ रुपये में आपकी कन्या का विवाह हो जायगा न !

ब्राह्मण

अच्छी तरह बाबूजी, अच्छी तरह हो जायगा।

[नौकर रुपये लाकर देता है। हरिश्चन्द्र ब्राह्मण को देते हैं, वह आशीर्वाद देता हुआ जाता है। हरिश्चन्द्र भी भीतर जाने ही वाले हैं कि डिग्रीदार का एक सब इन्स्पेक्टर और एक पुलिस सिपाही के साथ प्रवेश। इन्हें देख हरिश्चन्द्र ठहर जाते हैं।]

सब-इन्सपेक्टर

(आगे बढ़ बड़े आदरपूर्वक हरिश्चन्द्र को फौजी ढंग से सलाम करते है) बाबूजी, एक दर्दनाक कर्ज अदा कराने आया हूँ।

हरिश्चन्द्र

अच्छा, सात सौ रुपये की डिग्री का वारण्ट ही न ! चलिए मैं आपके साथ चलता हूँ, जरा टोपी लगा आऊँ।

डिग्रीदार

(सब इन्स्पेक्टर से धीरे से) आप भी इनके साथ भीतर जाइये।

सब-इन्सपेक्टर

(डाँटकर) क्या बदतमीजी करते हो ! **(हरिश्चन्द्र से)** हाँ, हाँ आप टोपी लगा आइये।

[हरिश्चन्द्र का नौकर के साथ प्रस्थान। माधवदास का प्रवेश। माधवदास लगभग ३० वर्ष की अवस्था के गौरवर्ण के सामान्य कद वाले

दुबले-पतले व्यक्ति हैं। चेहरे पर मूँछें हैं, सुन्दर दिखायी देते हैं। अँगरखा और पायजामा पहने हैं। सिर पर गोल पगड़ी है।]

माधवदास

(**सब इन्स्पेक्टर, पुलिस के सिपाही और डिग्रीदार को देखकर**) यह सब क्या माजरा है?

सब-इन्सपेक्टर

अच्छा, बाबू माधवदास जी, बाबू हरिश्चन्द्र पर इनकी सात सौ रुपये की डिग्री है, ये वारण्ट निकलवाकर उन्हें गिरफ्तार कराने आये हैं।

माधवदास

(**घृणा से**) बाबू हरिश्चन्द्र, गिरफ्तारी का वारण्ट! सात सौ क्या, वे सात हजार और सात अरब के लिए भी गिरफ्तार नहीं हो सकते। (**जेब से सात सौ रुपये के नोट निकाल डिग्रीदार के सामने फेंकते हुए**) ले जा अपने रुपये। (**प्रस्थान**)।

[नोट फैल जाते हैं, जिस तरह कुत्ता रोटी के टुकड़े झपट-झपट कर उठाता है, उसी प्रकार यह डिग्रीदार भी नोटों को उठाने लगता है। हरिश्चन्द्र का अपनी चौगोसिया टोपी लगाकर प्रवेश।]

हरिश्चन्द्र

चलिए इन्स्पेक्टर साहब मैं तैयार हूँ।

सब-इन्सपेक्टर

(**फिर उसी ढंग से सलाम करते हुए**) पर बाबूजी! डिग्रीदार को तो उसके रुपये मिल गये।

हरिश्चन्द्र

(**आश्चर्य से**) कैसे...कैसे?

तीसरा दृश्य

स्थान

रामनगर में काशीनरेश ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह का बैठकखाना

समय

तीसरा पहर

[बैठकखाना राजसी बैठकखानों के सदृश है और उसी ढंग से सजा है। दीवालों पर तैल रंग उस पर बेल-बूटे। बड़े-बड़े काँच के दरवाजे, खिड़कियाँ, दीवालों पर दीर्घकाय रंगीन तस्वीरें और शीशे। छत से झूलते हुए बड़े-बड़े झाड़ फानूस। जमीन पर मोटा कालीन और उस पर चाँदी से मढ़ा हुआ गंगा-जमनी फर्नीचर। एक सोफे पर काशीनरेश और उन्हीं के निकट एक गद्दीदार कुर्सी पर राजा शिवप्रसाद बैठे हुए हैं। ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह की अवस्था लगभग ५५ वर्ष की है, ये गौर वर्ण के सामान्य कद के व्यक्ति हैं। काशी की सुनहरी जरी के काम के कपड़े पहने हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं। शिवप्रसाद लगभग ५० वर्ष की अवस्था के गौर वर्ण के ऊँचे और कुछ स्थूल शरीर के व्यक्ति हैं। अँगरखा और ढीला पायजामा पहने हैं। सिर पर गोल पगड़ी है। एक चौकी पर पानदान इत्यादि रखे हुए हैं।]

शिवप्रसाद

हाँ, महाराज ! उसने मारा घर चौपट ही नही, स्वाहा कर दिया।

काशीनरेश

हूँ।

शिवप्रसाद

शायर तो उसके पिता गोपालचन्द्र जी भी थे। क्या बात है !

काशीनरेश

हाँ, कवि तो वे भी बड़े ऊँचे दर्जे के थे।

शिवप्रसाद

और जितने बड़े कवि थे, चाल-चलन के भी उतने ही नेक।

काशीनरेश

बड़े भारी भक्त थे।

शिवप्रसाद

यह तो नास्तिक है, नास्तिक!

काशीनरेश

नास्तिक तो आप हरिश्चन्द्र को नहीं कह सकते। गोपालमंदिर जाते हैं, अपने घर के ठाकुर मदनगोपाल जी की सेवा करते हैं।

शिवप्रसाद

सब बाहरी दिखावा है। दिखावा तो उसने यहाँ तक कर रखा है कि उसने अलीजान नर्तकी के सुंडिया मुहल्ले के मकान में भी एक ठाकुर सेवा पधराई है और वहाँ भी वल्लभकुल सम्प्रदाय के उत्सव हुआ करते हैं। लेकिन महाराज, दरअसल वह नास्तिक है। मजहब पर यकीन होता तो इस तरह विधवा-विवाह, छुआछूत वगैरह के संबंध में शायरी करता? कुकर्मी, वेश्यागामी। मैं तो जब उसकी उस पतिव्रता औरत मन्नोदेवी का हाल सुनता हूँ, मेरा तो कलेजा मुँह को आता है।

काशीनरेश

हाँ, उनकी दशा तो बड़ी शोचनीय है, उनके लिए तो हर आदमी के दिल में दर्द और सहानुभूति है।

शिवप्रसाद

गोपालचन्द्र जी का ऐसा नालायक लड़का होगा, यह किसी ने सोचा तक न था। फिर उसके अखबारों को उठाइये, सभी को गालियाँ। मुझ तक को नहीं छोड़ा।

काशीनरेश

(**मुस्कराकर**) पर आप को तो वे गुरुवर कहते हैं।

शिवप्रसाद

वह भी शायद मेरा मज़ाक उड़ाने के लिए। (**धीरे से**) और महाराज! अब तो उस पर सरकार की नजर भी बदली है।

काशीनरेश

अच्छा!

शिवप्रसाद

जी, हाँ। कविवचन सुधा में 'लेवी प्राण लेवी' नामक एक लेख निकला, फिर 'मरसिया' नामक दूसरा लेख निकला और 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक हुआ। बहुत जल्दी उसके अखबारों को जो सरकारी मदद मिल रही है, वह बंद होने वाली है। इसके सिवा इस पर कोई भी सरकारी आफत आ सकती है।

काशीनरेश

लेकिन, राजा साहब, हरिश्चन्द्र के जीवन का एक दूसरा पहलू भी है। सचाई, उदारता, निर्भीकता, उच्च से उच्च कोटि की कविता, नाटक, आज सारे देश में उनकी जैसी शोहरत है, कोई उन्हें शायरे मारूफ कहता है, कोई बुलबुले हिन्दोस्तान, कोई उन्हें उत्तरीय भारत का कविसम्राट् कहता है, और कोई एशिया का एकमात्र समालोचक। विलायत तक में उन्हें इस समय हिन्दोस्तान का पोइट लारियट कहा जाता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के मुआफिक लोगों ने उन्हें अपनी किताबें समर्पित की हैं।

शिवप्रसाद

कौन क्या कहता है, इसे तो छोड़ दीजिए महाराज! उसने प्रोपेगैण्डा कर कर अपनी यह शोहरत करायी है। दस आदमी एक बात को कहने लगे, सौ कहने लगते हैं, सौ कहने लगे, हज़ार कहने लगते हैं। उसको प्रोपेगैण्डा करने का आर्ट मालूम है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने

उसे शकुन्तला इसलिए समर्पित की कि विधवा-विवाह के आन्दोलन के समय विद्यासागर की बगल मे कोई हस्ती न रही थी, उन्हे यह बेवकूफ मिल गया उनका समर्थन करने वाला। आपने उसके तीन गुणो की बात कही है, सचाई, उदारता और निर्भीकता। सो महाराज, सचाई तो उसमे छू नही गयी है, खुद लफगा और सारे साथी लफगे, उदारता थोडी-बहुत शायद है, सो उसका नतीजा देख लीजिये, घर फूक दिया, भीख माँगने की नौबत है और निर्भीकता का तो अब पता लगेगा जब सरकारी वार होगे।

[वर्दी पहने हुए एक दरबान का चाँदी की तश्तरी मे एक कार्ड लिए हुए प्रवेश। दरबान सलाम कर तश्तरी काशीनरेश के सामने करता है। काशीनाथ कार्ड उठाकर पढ़ते है।]

काशीनरेश

लीजिये, जिनकी चर्चा हो रही थी, वे ही आये है।

शिवप्रसाद

हरिश्चन्द्र ?

काशीनरेश

जी, हाँ।

शिवप्रसाद

तो मै चला।

काशीनरेश

नही, नही, बैठिये। आप कहाँ जायँगे ?

शिवप्रसाद

नही, महाराज! म उसका मुँह नही देखना चाहता। **(शीघ्रता से प्रस्थान)**।

काशीनरेश

(हँसते हुए दरबान से) हरिश्चन्द्र जी को भेज दो।

[दरबान का प्रस्थान, हरिश्चन्द्र का प्रवेश। वे इस समय अपनी पूरी पोशाक पहने हुए हैं। अँगरखा, पाजामा, अँगरखे पर चोगा, सिर पर चौगोसिया टोपी। हरिश्चन्द्र काशीनरेश को प्रणाम करते हैं।]

काशीनरेश

(खड़े हो प्रणाम का उत्तर देते हुए) आओ बबुआ, आओ। आज बहुत दिन में आये, बैठो।

[काशीनरेश सोफे पर और हरिश्चन्द्र उसी कुर्सी पर बैठते हैं, जिस पर शिवप्रसाद बैठे थे।]

हरिश्चन्द्र

(पान-दान से दो पान लेकर खाते हुए) हाँ, चाचाजी, इन दिनों कुछ अधिक व्यस्त रहा, इसलिए सेवा में न आ सका।

काशीनरेश

एक काम हो तो व्यस्त न रहो। इतना लिखना-पढ़ना, पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करना, संस्थाएं चलाना।

हरिश्चन्द्र

ये सब तो बहुत दिनों से हो ही रहा है चाचाजी! एक नया काम आरम्भ किया है।

काशीनरेश

वह कौन-सा?

हरिश्चन्द्र

हिन्दी को राजभाषा पद दिलाने के लिए आन्दोलन।

काशीनरेश

(विचारते हुए) पर आप समझते हो, इसमें आपको कामयाबी मिलेगी? इस काम के लिए यह ठीक वक्त है?

हरिश्चन्द्र

कामयाबी मिले या न मिले चाचाजी, और आज का समय ठीक हो या न हो, पर जब इस देश के आधे निवासियों की हिन्दी मातृभाषा है, और शेष में से अधिकांश इसे समझते हैं, तो आज हो या कल, इस देश की राजभाषा तो हिन्दी ही होगी।

काशीनरेश

(**कुछ विचारते हुए**) मुझे तो अभी वह वक्त बहुत दूर दिखायी देता है, जब हिन्दी इस देश की लेंगवा फ्रेंका हो। (**कुछ रुककर**) और क्या हाल है ? क्या आजकल रुपये-पैसे की कुछ ज्यादा दिक्कत हो गयी है ?

हरिश्चन्द्र

यों ही चलता रहता है, चाचाजी !

काशीनरेश

सुना है, आपकी नानी ने पहले जो एक वसीयतनामा लिखा था, और उसमें आपको भी कुछ दिया था, वह उन्होंने बदल डाला।

हरिश्चन्द्र

जी, हाँ।

काशीनरेश

पहले वसीयतनामे में आपको बहुत कुछ मिलने वाला था।

हरिश्चन्द्र

हाँ, चाचाजी।

हरिश्चन्द्र

और इस नये वसीयतनामे में अब आपको कुछ न मिलकर सब बाबू गोकुलचन्द्र को मिलेगा ?

हरिश्चन्द्र

जी, हाँ।

[दरबान का प्रस्थान, हरिश्चन्द्र का प्रवेश। वे इस समय अपनी पूरी पोशाक पहने हुए हैं। अँगरखा, पाजामा, अँगरखे पर चोगा, सिर पर चौगोसिया टोपी। हरिश्चन्द्र काशीनरेश को प्रणाम करते हैं।]

काशीनरेश

(खड़े हो प्रणाम का उत्तर देते हुए) आओ बबुआ, आओ। आज बहुत दिन में आये, बैठो।

[काशीनरेश सोफे पर और हरिश्चन्द्र उसी कुर्सी पर बैठते हैं, जिस पर शिवप्रसाद बैठे थे।]

हरिश्चन्द्र

(पान-दान से दो पान लेकर खाते हुए) हाँ, चाचाजी, इन दिनों कुछ अधिक व्यस्त रहा, इसलिए सेवा में न आ सका।

काशीनरेश

एक काम हो तो व्यस्त न रहो। इतना लिखना-पढ़ना, पत्र-पत्रिकाओं का सपादन करना, संस्थाएं चलाना।

हरिश्चन्द्र

ये सब तो बहुत दिनों से हो ही रहा है चाचाजी! एक नया काम आरम्भ किया है।

काशीनरेश

वह कौन-सा?

हरिश्चन्द्र

हिन्दी को राजभाषा पद दिलाने के लिए आन्दोलन।

काशीनरेश

(विचारते हुए) पर आप समझते हो, इसमें आपको कामयाबी मिलेगी? इस काम के लिए यह ठीक वक्त है?

हरिश्चन्द्र

कामयाबी मिले या न मिले चाचाजी, और आज का समय ठीक हो या न हो, पर अब इस देश के आधे निवासियों की हिन्दी मातृभाषा है, और शेष में से अधिकांश इसे समझते हैं, तो आज हो या कल, इस देश की राजभाषा तो हिन्दी ही होगी।

काशीनरेश

(**कुछ विचारते हुए**) मुझे तो अभी वह वक्त बहुत दूर दिखायी देता है, जब हिन्दी इस देश की लेंगवा फ्रेंका हो। (**कुछ रुककर**) और क्या हाल है ? क्या आजकल रुपये-पैसे की कुछ ज्यादा दिक्कत हो गयी है ?

हरिश्चन्द्र

यों ही चलता रहता है, चाचाजी !

काशीनरेश

सुना है, आपकी नानी ने पहले जो एक वसीयतनामा लिखा था, और उसमें आपको भी कुछ दिया था, वह उन्होंने बदल डाला।

हरिश्चन्द्र

जी, हां।

काशीनरेश

पहले वसीयतनामे में आपको बहुत कुछ मिलने वाला था।

हरिश्चन्द्र

हाँ, चाचाजी।

हरिश्चन्द्र

और इस नये वसीयतनामे में अब आपको कुछ न मिलकर सब बाबू गोकुलचन्द्र को मिलेगा ?

हरिश्चन्द्र

जी, हाँ।

काशीनरेश

इस मामले में ताज्जुब की बात यह सुनी कि आपने भी अपनी नानी को इस संबध में अपनी स्वीकृति लिख दी।

हरिश्चन्द्र

तो मैं क्या उनसे झगडा करता! उनकी जायदाद थी, जिसे वे देना चाहती हैं, उसे वे दे दें।

काशीनरेश

यह तो ठीक है, वे जो चाहे करती, पर आपको मंजूरी देने की क्या पड़ी थी?

हरिश्चन्द्र

उन्होंने मुझसे मंजूरी माँगी, मैं न देता तब तो मैं यह हरिश्चन्द्र न रहकर कोई दूसरा व्यक्ति हो जाता।

[कुछ देर निस्तब्धता]

काशीनरेश

बबुआ, आपके पिताजी ने आपके घर में एक सरस्वती भवन स्थापित किया था न?

हरिश्चन्द्र

जी, हाँ।

काशीनरेश

और उसमें बड़ा कीमती पुस्तकों का संग्रह है।

हरिश्चन्द्र

जी, हाँ। उसमें अनेक अलभ्य और अमूल्य ग्रन्थ हैं।

काशीनरेश

मुझे याद है कि आपके पिता के वक्त उस सरस्वती भवन में कुँवार महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी से नवमी तक एक उत्सव मनाया जाता

था। भारी पुस्तको का एक पहाड़ बनता था, उस पर सरस्वती की मूर्त्ति रखकर, सरस्वती का पूजन होता था। आपको याद है ?

हरिश्चन्द्र

बहुत अच्छी तरह याद है चाचाजी।

काशीनरेश

जब मैंने सुना कि इन दिनों आपको रुपये पैसे की बहुत तकलीफ है, तब मैंने डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के मार्फत उस संग्रह के लिए एक लाख रुपये का आफर मंगाया है, उसे आप देना चाहते हैं ?

हरिश्चन्द्र

(**विचारते हुए**) प्राण रहते तो उस संग्रह को न दूँगा।

काशीनरेश

भई, अजीब ही आदमी हो।

[कुछ देर निस्तब्धता]

अच्छा देखो, मैं आपको एक काम के लिए बुलवाने वाला ही था, अच्छा हुआ आप आ गये।

हरिश्चन्द्र

आज्ञा दीजिए।

काशीनरेश

बुढवा मंगल का मेला नजदीक आ रहा है। इस मेले का दूलह तो आपका ही वंश है। पर इस वक्त आपकी जैसी हालत हो गयी है, उसे देखते हुए इस साल आपको इस मेले पर बहुत खर्च नहीं करना चाहिये।

हरिश्चन्द्र

चाचाजी, आप कहते ही हैं कि इस मेले का दूलह मेरा ही वंश है, फिर क्या पूर्वजों के नाम पर बट्टा लगा दूँ ?

काशीनरेश

पर बबुआ घर को देखकर काम करो।

हरिश्चन्द्र

चाचाजी! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊंगा

[काशीनरेश कुछ आश्चर्य से हरिश्चन्द्र की ओर देखते हैं।]

यवनिका

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान

गंगा का प्रवाह

समय

रात्रि

[गंगा में दूर पर कई नौकाएँ, बजड़े और कच्छे दिखायी पड़ते हैं, पर रात्रि के कारण धूमिल, इनकी बत्तियाँ अवश्य चमक रही हैं। नजदीक हरिश्चन्द्र का कच्छा दिखायी देता है। इस कच्छे का आधा भाग दिखता है। कच्छा सुन्दरता से सजा हुआ है। गैस की बत्तियों का कच्छे में तेज प्रकाश है। कच्छे में हरिश्चन्द्र तथा उनके अनेक मेहमान बैठे हुए हैं। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं। इनमें बदरीनारायण 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह, गोस्वामी राधाचरण, रमाशंकर व्यास, बाबा सुमेरसिंह, कृष्णदेवशरणसिंह और राधाकृष्णदास भी हैं। हरिश्चन्द्र तथा शेष सभी मेहमान गुलाबी रंग की पगड़ी बाँधे हैं और गुलाबी रंग का ही दुपट्टा गले में डाले हुए हैं। नर्तकी का नृत्य हो रहा है, नाच के बाद पक्का गाना होता है।]

तूम तनाना तेलेना तुम नादिर दाना

[इस गान के साथ सरगम और अलापें]

[गीत पूर्ण होते-होते काशीनरेश की मोरपंखी नौका आती है। काशीनरेश कुछ मेहमानों के साथ इस नाव पर सवार हैं। काशीनरेश और उनके साथी भी गुलाबी रंग की पगड़ियाँ बाँधे हैं और गुलाबी रंग के ही दुपट्टे गले में डाले हैं। यह मोरपंखी हरिश्चन्द्र के कच्छे के निकट इस प्रकार खड़ी की जाती है, जिससे काशीनरेश और उनके साथी मोरपंखी से

उतर हरिश्चन्द्र के कच्छे पर जा सकें। काशीनरेश की मोरपंखी देख हरिश्चन्द्र और हरिश्चन्द्र के साथी सभी लोग खड़े हो जाते हैं। उपस्थित लोग हर-हर महादेव कहकर काशी नरेश का स्वागत करते हैं। हरिश्चन्द्र आगे बढ़ काशीनरेश का स्वागत करते हैं। काशीनरेश हरिश्चन्द्र को हृदय से लगा लेते हैं। कुछ व्यक्ति काशीनरेश को झुककर दोनों हाथों से प्रणाम करते हैं, और कुछ उनके करण स्पर्श करते हैं। प्रणाम करने वालों को काशीनरेश प्रणाम द्वारा उत्तर देते हैं और चरण स्पर्श करने वालों को आर्शीर्वाद देते हैं। सब लोग हरिश्चन्द्र के कच्छे पर बैठते हैं।]

काशीनरेश

(**हरिश्चन्द्र से**) तो बुढ़वा मंगल इस बार भी खूब मनाया गया!

हरिश्चन्द्र

हाँ, चाचाजी। हर वर्ष के सदृश ही।

एक मुसलमान मेहमान

शायद दुनियाँ में इस तरह का मेला किसी मुल्क में न होता होगा।

दूसरा मेहमान

आप दुनियाँ की बात कहते हैं, मैं समझता हूँ जैसा बुढ़वा मंगल के चार दिनों में काशी में नाच-रंग चलता है, वैसा स्वर्ग में इन्द्र के परिस्तान में भी न चलता होगा।

काशीनरेश

(**हरिश्चन्द्र की ओर संकेत कर**) इस मेले का दूलह तो इन्हीं का वंश है।

हरिश्चन्द्र

हमारे वंश ने तो जो कुछ भी किया है, सदा ही महाराज के राजकुल के आदेश और परामर्श पर ही किया है।

काशीनरेश

तो बुढ़वा मंगल मेले की सबको मुबारकबाद।

हरिश्चन्द्र

(नर्तकी से) तुम भी मुबारिकबादी गाओ बाई जी !

[फिर तबला ठनकता है और नर्तकी आदाब बजाकर गाना आरम्भ करती है ।]

बुढ़वा मंगल मेला हर बार मुबारक होवे ।
मेला औ मेले का दरबार मुबारक होवे ॥
बागवाँ फूलों से आबाद रहे सहने चमन ।
बुलबुलो गुलशने बेखार मुबारक होवे ॥
मुज्दए दिलकी फिर आई है गुलिस्ताँ में बहार ।
मैकशो खानए खुम्मार मुबारक होवे ॥
दोस्तों के लिए शादी हो अदू को गम हो ।
खार उनको इन्हें गुलजार मुबारक होवे ॥
जमजमों ने तेरे बसकर दिए लब बंद 'रसा' ।
यह मुबारक तेरी गुफ्तार मुबारक होवे ॥

काशीनरेश

(गाना समाप्त होने पर नर्तकी से) अच्छा बाई जी, अब बबुआ की कोई चीज़ हो ।

एक मेहमान

हाँ, हरिश्चन्द्र जी की चीज़ें तो अब देश भर में नगर-नगर और गाँव-गाँव में गायी जाने लगी हैं ।

दूसरा मेहमान

काशी की तो हर गली में ।

तीसरा मेहमान

और सभी गाते हैं ।

चौथा मेहमान

हिन्दू और मुसलमान सभी ।

पाँचवाँ मेहमान

हाँ, सभी जातियों और सभी फिरकों के लोग ।

छठवाँ मेहमान

क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध ।

सातवाँ मेहमान

क्या मर्द और क्या औरतें ।

काशीनरेश

(**नर्तकी से**) आपको बबुआ जी की कोई चीज़ याद है न ?

नर्तकी

कई चीज़ें महाराज ! यहाँ ऐसी कौन नर्तकी होगी, जिसे हरिश्चन्द्र जी की चीज़ें याद न हों ?

[फिर से तबला ठनकता है और नर्तकी गान आरम्भ करती है ।]

अजुगत कीन्ही रे रामा ।
लगाए काँची प्रीति गए परदेसवा अजुगत कीन्ही रे रामा ।
बारी रे उमिरि मोरी नरम करेजवा विपति नई दीन्ही रे रामा ॥
अजुगत कीन्ही·····
हरीचंद बिन रोइ मरौं रे खबरियौ न लीन्हीं रे रामा ॥
अजुगत कीन्हीं ···

एक मुसलमान मेहमान

अब हरिश्चन्द्र जी की ही कोई उर्दू की गज़ल हो ।

कुछ व्यक्ति

(**एक साथ**) हाँ, हाँ ।

नर्तकी

बहुत खूब, (गाती है)।

दिलदार यार प्यारे गलियों में मेरे आजा।
आँखें तरस रही हैं सूरत इन्हें दिखा जा॥
चेरी हूँ तेरी प्यारे इतना तो मत सता रे।
लाखों ही दुःख सहारे टुक अब तो रहम खाजा॥
तेरे ही हेत मोहन छानी है खाक बन बन।
दुख झेले सर पर अनगन अब तो गले लगा जा॥
मन को रहूँ मैं मारे कब तक बता दे प्यारे।
सूखे विरह में तारे पानी इन्हें पिला जा॥
सब लोक-लाज खोई दिन रैन बैठ रोई।
जिसका कहीं न कोई उसका तो जी बचा जा॥
मुझको न यों भुलाओ कुछ शर्म जी में लाओ।
अपनों को मत सताओ ए प्रान प्यारे राजा॥
हरीचंद नाम प्यारी दासी है जो तुम्हारी।
मरती है वह बिचारी आकर उसे जिला जा॥

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान में मन्नोदेवी का कमरा

समय

सन्ध्या

[वही कमरा है, जो पहले अंक के तीसरे दृश्य, दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में था। बीमार मन्नोदेवी अपने पलंग पर लेटी हुई है। गले तक का शरीर रुई की एक पतली दुलाई से ढका है, पलंग के पास ही एक कुर्सी पर

डा० ईश्वरचन्द्र चौधरी बैठे हुए हैं। ईश्वरचन्द्र चौधरी लगभग २५ वर्ष की अवस्था के गेहुँए रंग के ऊँचे कद के व्यक्ति हैं। दाढ़ी मूछें मुड़ी हुईं। बंद गले का कोट और पतलून पहने हैं। सिर पर फेल्ट टोपी है।]

ईश्वरचन्द्र चौधरी

आपका कोई शारीरिक बीमारी नेई, श्रीमती जी।

मन्नोदेवी

तो!

ईश्वरचन्द्र चौधरी

शारा मानसिक बीमारी।

[मन्नोदेवी कोई उत्तर न दे दीर्घ निःश्वास छोड़ती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

ईश्वरचन्द्र चौधरी

हरिश्चन्द्र जी के होम सोभी साथियों को आपका लिए जितना चिंत रहता, उसको वोर्णन नेई हो शकता।

मन्नोदेवी

पर, उन्हें मेरी कोई चिंता नहीं है।

ईश्वरचन्द्र चौधरी

नेई, नेई। ये आप उनके साथ ओन्याय करता। उनका-सा खोश मिज़ाज और ठट्ठा कोरने वाला आदमी को ईस दुनियाँ में जोदि कोई चिंता तो आपका।

मन्नोदेवी

क्या कहते हैं डाक्टर साहब! उन्हें मेरी चिंता? चिंता छोड़ अब तो ज़रा-सी परवाह तक नहीं रह गयी है।

ईश्वरचन्द्र चौधरी

एकदम गोलत बात है, आपका।

मन्नोदेवी

यदि उन्हें मेरी चिंता और परवाह होती तो इस प्रकार मेरे पास आना बन्द कर देते ? आप जानते हैं कि वे महीनों से मेरे पास आये तक नहीं !

ईश्वरचन्द्र चौधरी

वो बिलकुल दूसरी बात।

मन्नोदेवी

(**उठते हुए आश्चर्य से**) वह बिलकुल दूसरी बात ? जो दर्शन देने भी क्षणमात्र को मेरे पास फटकते नहीं, मैं बीमार हूँ यह जानते हुए भी, मर रही हूँ या जी रही हूँ, यह पूछने तक कभी नहीं आते। आप कहते हैं कि उन्हे मेरी चिंता है !

ईश्वरचन्द्र चौधरी

हम बिलकुल ठीक कहता श्रीमती जी। अब वे आपका इलाज तोथा आपको कोई कष्ट न हो, ईसका ब्यौरेवार निरीक्षोण कर सारा प्रोवन्ध किया है। वो आपके पास आता तो ईसलिए नई कि यहाँ आने का उनको साहस नई होता। ओनेक बार होम लोगों से वोलता कि वो पोतित और आप पावन ! आजकल तो वो बोलता कि वो इतना पोतित हो गिया कि आपके सामने आने के जोग्य नेई। उन्हें ईस ओर पैर उठाने में भोय लागता। खमा कीजिये ईस बारे में उनका भावना को उनका जोनम का साथी होने पर भी आप तक नहीं बूझता।

मन्नोदेवी

खैर छोड़िये मुझे, आप देखते हैं घर का क्या हाल हो रहा है ! नकद में फूटी कौड़ी नहीं बची है, जायदाद पर वजन बढ़ रहा है। नालिशें ऑर डिग्रियों की भरमार है। अभी एक डिग्री के वारण्ट में

गिरफ्तार होते-होते बचे। और इतने पर भी अनाप-सनाप खर्च। एक ओर दान चलता है, ओढ़ा हुआ दुशाला तक दे दिया जाता है, दूसरी ओर चंदे चलते हैं, तीसरी ओर आनन्द और विहार। अभी बुढ़वा मंगल के मेले में हजारों ही खर्च हुए हैं। मुझे तो आश्चर्य इस पर होता है कि ये आँख के अंधे लोग उन्हें रुपया देते कैसे हैं।

ईश्वरचन्द्र चौधरी

हाँ, इसका उनको चिंता नेई। आप शायद नई जानता होगा कि अबी एक दिन जोब काशीनरेश ने कहा कि बबुआ घर को देखकर काम करो, तब वो बोला, चाचाजी इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब हम इसको खायगा। पर श्रीमती जी इस विषय मे उनका चरित का दूसरा पहलू बी है।

मन्नोदेवी

कौन-सा। घर फूंक तमाशा देखकर भी कोई दूसरा पहलू होता है?

ईश्वरचन्द्र चौधरी

नेई, नेई, आप उसको भी देखने का प्रयत्न कीजिये। श्रीमती जी, इतना बड़ा आदमी आज तो ईस देश में दूसरा नेई। कोई भी अर्थी विमुख होकर आपका द्वार से नहीं लौटता। धोन संपत्ति तो एक-न-एक दिन किसी-न-किसी तरा चलाई जाता। दुनियाँ में बड़ा-बड़ा साम्राज्य तक आया और गिया। कीतना भाषा जानता हिन्दी, ओंगरेजी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, मोराठी, गुजराती, पोंजाबी, और कीतना उपभाषा मारवाड़ी इत्यादि, बीसों भाषा ऊपभाषा। फिर जो कुछ उनाने लिखा है, उसका हिन्दी जोगत में आज जो जगा हो गिया है, उसका भी आप तक कोल्पना नेई कर सकता। उनको भारतेन्दु का उपाधि दिया जाने वाला है। हमरा जैसा वैज्ञानिक उनका पद गा-गाकर शांति पाता और कर्त्तव्य का लिए तैयार होता।

[डाक्टर मग्न होकर गाने लगते हैं। मन्नोदेवी कुछ आश्चर्य से उनकी देखने लगती हैं।]

कोथाय आछ ओहे प्रिय अबला जीवन।
प्रानधन श्यामघन॥
नवनील-वर्ण तन पूर्ण-चन्द्र-निभानन।
कूजित वंशिकास्वन प्रसन्न वदन॥
कर दुःख विनाशन ओहे गोपिका-रमन।
आशिया भी वृन्दावन दाओ दर्शन॥
हरिश्चन्द्र निवेदन सुन दिया किछु मन।
ओई पदे समर्पण आछे गो जीवन॥

ईश्वरचन्द्र चौधरी

आप देखा! हम बात करता-करता उनका कोविता का रस में बह गिया। अच्छा देखिये हम आपका लिए उन्हें एक लम्बा चिट्ठी लिखेगा।

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान

कासी की कचहरी में सर सैय्यद अहमद सदर आला की अदालत

समय

दोपहर

[आधुनिक काल की अदालतों के सदृश अदालत है। बीच में एक तख्त है, जो एक लकड़ी के कटहरे से घिरा है, इसी कटहरे के एक ओर गवाह के खड़े होने के लिए अलग कटहरा लगा हुआ है। तख्त पर हरे रंग की बिछावन है, बिछावन पर एक बड़ी टेबिल है, यह भी मेजपोश से ढकी है। टेबिल पर लिखने-पढ़ने का सामान है और मुकदमों की कई मिसलों की थप्पियाँ लगी हैं। टेबिल के पीछे की ओर सदर आला साहब की कुर्सी है। तखत के नीचे सिरसतेदार के बैठने की कुर्सी है। और उसके सामने भी एक टेबिल है। तखत के सामने कुछ बेंचें रखी हैं। इस समय अदालत म

एक चपरासी को छोड़ और कोई नहीं है। हरिश्चन्द्र का अपने वकील और कुछ मित्रों के साथ प्रवेश। हरिश्चन्द्र इस समय अपने पूरे वस्त्र उसी प्रकार पहने हुए हैं, जैसे काशीनरेश की मुलाकात के समय थे। पान चबा रहे हैं।]

वकील

मुझे पक्का मालूम है, हरिश्चन्द्र जी कि सर सैय्यद अहमद साहब को आपके इस मुकदमों का कुल हाल मालूम हो गया है और आपके प्रति उनकी बहुत अधिक सहानुभति है।

हरिश्चन्द्र

मैं जानता हूँ वे मुझ पर बहुत कृपा रखते हैं।

एक मित्र

तब आज उस कृपा की परीक्षा ले लीजिये।

हरिश्चन्द्र

चाँदी-सोने के निर्जीव टुकड़ों से किसी व्यक्ति और वह भी सर सैय्यद साहब के सदृश व्यक्ति की जीवित कृपा को तौला जा सकता है ?

दूसरा मित्र

खैर छोड़िये इसे, पर काशी के इस शायलाक ने आखिर आपको कितने रुपये दिये थे ?

हरिश्चन्द्र

जितने की उसने नालिश की है।

पहला मित्र

बिलकुल गलत। जितने रुपये दिए होंगे, उससे तिगने चौगने की रसीद लिखवायी होगी।

चौथा मित्र

देखिये, आपकी सत्यवादिता की इतनी प्रतिष्ठा हो गयी है कि आपके मुकदमों में अगर सारे गवाह एक तरफ हों और आपका बयान दूसरी

तरफ तो मुकदमें का फैसला आपके बयान के अनसार होता है। अदालत की एक तजवीज में लिखा है—"चें कि बाबू हरिश्चन्द्र की सत्यता पर अदालत को पूर्ण विश्वास है, इससे उनके स्वीकार और अस्वीकार ही के अनुसार डिग्री दी जाती है और अन्य साथी की कोई अपेक्षा नहीं।" हम यह नहीं कहते कि आप कोई असत्य बात कहें, जितना रुपया उस भले आदमी से लिया है, उतना वता दीजिये।

[सर सैय्यद अहमद का प्रवेश। ऊँचे पूरे मोटे व्यक्ति। लम्बी दाढ़ी। शेरवानी और ढीला पाजामा पहने हुए। सर सैय्यद हरिश्चन्द्र को देख उनकी ओर बढ़ उनसे हाथ मिलाते हैं। शेष लोग सर सैय्यद का अभिवादन करते हैं। सर सैय्यद अभिवादनों का उत्तर दे अपनी तखत पर की कुर्सी पर बैठते हैं। अदालत में उपस्थित लोग बेंचों पर बैठते हैं। सिरस्तेदार एक मिसल खोलकर सर सैय्यद अहमद के सामने रखता है। उसी समय वादी का अपने वकील के साथ प्रवेश। ये लोग भी बेंच पर बैठते हैं।]

सैय्यद अहमद

(**सरिस्तेदार से**) अच्छा, पहले हरिश्चन्द्र जी का मुकदमा ही निबटा लो। (**बेंचों की ओर देख**) मुद्दई और मुद्दायले दोनों मौजूद हैं, एक कुर्सी मेरे वगल में रखो, मैं हरिश्चन्द्र जी का बयान उन्हें यहाँ बिठाकर लूँगा।

[सिरिस्तेदार चपरासी से एक कुर्सी तखत पर रखवाता है।]

सैय्यद अहमद

(**हरिश्चन्द्र से**) पहले मैं आप ही को फारिग किये देता हूँ, जिससे आपका शायरी का वक्त जाया न हो। (**मुस्कराते हुए**)

हरिश्चन्द्र

(**मुस्कराते हुए**) मुझ पर तो आपकी सदा ही कृपा रहती है।

सैय्यद अहमद

आइये, इधर मेरे पास की कुर्सी पर तशरीफ रखिये, आपका बयान यहीं लूँगा।

हरिश्चन्द्र

(तखत की ओर जाते हुए) नवाजिश है, आपकी। **(तखत के ऊपर निकट सर सैय्यद अहमद के पास रखी कुर्सी पर बैठ जाते हैं)।**

सैय्यद अहमद

(मिसल को देखते हुए) कहिये, इस शख्स से आपने कितने लिए थे?

हरिश्चन्द्र

जितने का इन्होंने दावा किया है।

सैय्यद अहमद

आपने असल में इनसे कितने रुपये पाये?

हरिश्चन्द्र

पूरे रुपये पाये।

सैय्यद अहमद

जो कटर इन्होंने लगा दिया है, वह कितने रुपये का है?

हरिश्चन्द्र

जितने का मैंने लेना स्वीकार किया था।

सैय्यद अहमद

बाबू साहब! आप भूलते होंगे, जरा समझ-बूझकर जवाब दीजिये।

हरिश्चन्द्र

सैय्यद साहब! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिए नहीं बिगाड़ने का। मुझसे इस महाजन ने जबर्दस्ती हुण्डी नहीं लिखा ली

ओर न मैं बच्चा ही था कि समझता न था, जबकि मैंने अपनी गरज से समझ-बूझकर उसका मूल्य तथा नजराना आदि स्वीकार कर लिया तो क्या मैं अब देने के भय से उस सत्य को भंग कर दूं। फिर तो सैय्यद साहब, मैं सत्य हरिश्चन्द्र के सदृश नाटक लिखने के उपयुक्त नहीं हूं और न यह दोहा—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥

[सैय्यद साहब तथा अदालत में उपस्थित सब व्यक्ति भौचक्के से रह जाते हैं।]

यवनिका

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान

काशी का टाउन हाल

समय

सन्ध्या

[टाउनहाल कागज की वन्दनवारों से सजाया गया है। बीचोंबीच एक तखत है, जिस पर चाँदी से मढ़ी हुई गंगा-जमनी दो कुर्सियाँ हैं। इन कुर्सियों में से एक पर काशीनरेश और दूसरी पर हरिश्चन्द्र बैठे हुए हैं। इस समय भी उनके मुंह में पान है। तखत के नीचे कुछ पंक्तियाँ कुर्सियों की हैं और कुर्सियों के बाद बेंचों की। इन कुर्सियों और बेंचों पर काशी के नागरिक और जनता उपस्थित है। इनमें चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह, रमाशंकर व्यास, गोस्वामी पं० राधाचरण, बाबा सुमेरसिंह, कृष्णदेवशरणसिंह और राधा-कृष्णदास भी हैं। जिस तखत पर काशीनरेश और हरिश्चन्द्र बैठे हैं, उसी तखत के निकट एक छोटे से तखत पर कुछ गायक अपने वाद्य-यन्त्रों के साथ मौजूद हैं।]

काशीनरेश

(खड़े हो कर। काशीनरेश के खड़े होते ही सारा हाल हर-हर महादेव की ध्वनि में गूंज उठता है।) आज हम लोग जिस शुभ कार्य के लिए एकत्रित हुए हैं, वह आप सब लोगों को मालूम है। बाबू हरिश्चन्द्र जी को आज केवल काशी की ओर से नहीं, पर सारे भारत की ओर से 'भारतेन्दु' की पदवी दी जाने वाली है। उसी का यह समारोह है। अब पहले मंगल-गान होगा। (बैठ जाते हैं।)

[वाद्यों के साथ गायन आरम्भ होता है।]

जय जय हरि नंद-नंद पूर्ण ब्रह्म दुख निकंद,
परमानंद जगत-वंद सेवक सुखदाई।
परम जस पवित्र गाथ दीन बन्धु दीनानाथ,
स्रवन दास ध्यान सुखद गोवर्द्धन राई॥
गोप गोपिकादि-पाल सतत असुर-बंस-काल,
सकल कला-गुन-निधान कीरति जग छाई।
हरीचंद प्राननाथ कीर्तिसुता लिए साथ,
पावन गुन अवलि विमल श्रुति मन नित गाई॥

काशीनरेश

(**पुनः खड़े होकर**) सज्जनों, बाबू हरिश्चन्द्र जी को 'भारतेन्दु' की जो यह उपाधि दी जाने वाली है, उसका एक बड़ा मनोरंजक इतिहास है और उसे प्रगट करने का आज से अच्छा कोई सुअवसर सभव नहीं है। आप जानते हैं, हरिश्चन्द्र जी बड़े निर्भीक समालोचक हैं, इसीलिए अनेक स्थानों के विद्वान् उन्हें एशिया का एकमात्र समालोचक कहा करते हैं। हरिश्चन्द्र जी यह समालोचना हर क्षेत्र में करते हैं। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक कोई भी क्षेत्र इनकी इस समालोचना से बचा नहीं। बाबू साहब में अपने पत्र मे "सबै जाति गोपाल की" इस शीर्षक के एक लेख में काशी के पंडितों की समालोचना की। लाहोर के जबला पंडित के वंशज पंडित रघुनाथ जी काशी में रहने लगे हैं। वे इस समालोचना पर बड़े नाराज होकर हरिश्चन्द्र जी से बोले कि आपको कुछ ध्यान नहीं रहता कि कौन आदमी कैसा है, सभी का अपमान किया करते हो। जैसे आप अपने सुयश से जाहिर हो उसी तरह अपने भोग-विलास और बड़ों की निंदा करने से आप कलंकी भी हो। इसलिए आज से मैं आपको 'भारतेन्दु' के नाम से पुकारा करूँगा। (**करतलध्वनि**) जिस समय पंडित रघुनाथ जी ने हरिश्चन्द्र जी से यह बात कही उस समय हरिश्चन्द्र जी के पास पं०

सुधाकर जी द्विवेदी और भरतपुर के राव श्री कृष्णदेवशरणसिंह जी भी मौजूद थे । पंडित सुधाकर जी और राव साहब भी हँसी से कहने लगे कि बाबू साहब आप सचमुच भारतेन्दु हैं। हरिश्चन्द्र जी ने भी हँसकर कहा कि मैं नाराज नहीं हूँ। आप लोग खुशी से मुझे भारतेन्दु कहिये। पंडित सुधाकर जी बोले—पूरे चाँद में कलंक दिख पड़ता है आप दूज के चाँद हैं जिसके दर्शन को लोग पुण्य समझते हैं। **(करतलध्वनि)** पं० सुधाकर जी की यह बात सबके मनमें खुशी के साथ समा गयी। धीरे-धीरे हरिश्चन्द्र जी की पोथियों पर दूज के चाँद की मूरत छपने लगी और अंत में पं० रामेश्वरदत्त जी व्यास ने भारतसुधानिधि पत्र के एक लेख में प्रस्ताव किया कि हरिश्चन्द्र जी को चिढ़ाने के लिए उन्हें जो भारतेन्दु कहा गया था उसी पदवी से उन्हें विभूषित कर दिया जाय; सारे देश ने इसे सहर्ष स्वीकार किया है और आज उसी भारतेन्दु पदवी से हरिश्चन्द्र जी को विभूषित करने के लिए यह समारोह किया गया है।

(बैठ जाते हैं करतल ध्वनि)

[समारोह के एक व्यवस्थापक उठकर एक ताम्रपत्र काशीनरेश को देते हैं और एक छोटी-सी टोकरी में एक बड़ा-सा गजरा टेबिल पर रखते हैं। काशीनरेश पुनः ताम्रपत्र पढ़ते हैं।]

काशीनरेश

हिन्दी के प्राण
भारत के पोइट-लॉरियट
शायरे मारूफ, बुलबुले हिन्दुस्तान
उत्तरी भारत के कविसम्राट
एशिया के एकमात्र समालोचक

श्री बाबू हरिश्चन्द्र
की
सेवा में

परम प्रेमनिधि रसिक वर अति उदार गुन खान।
जग-जन रंजन आशु कवि को हरिचंद समान॥
जिन गिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचंद को को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यौ अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन लीजत वाको नाँव॥
चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत को नेम।
यह दृढ़ श्री हरिचन्द को टरै न अविचल प्रेम॥

ऐसे

श्री बाबू हरिश्चन्द्र को

भारतवासी

'भारतेन्दु' की पदवी

से

विभूषित

कर

स्वयं कृतार्थ होते हैं

आपके--भारतवासी

[काशीनरेश ताम्रपत्र पढ़ने के उपरान्त उस ताम्रपत्र को भारतेन्दु को देते हैं, जिसे भारतेन्दु खड़े हो सिर झुका दोनों हाथ में ले काशीनरेश का नमन करते हैं। (करतलध्वनि) अब काशीनरेश टोकरी में रखे हुए गजरे को भारतेन्दु को पहनाते हैं। भारतेन्दु फिर सिर झुका गजरा पहनते हैं और फिर से काशीनरेश का नमन करते हैं।] (करतलध्वनि)

काशीनरेश

अब भारतेन्दु अपना सन्देश देंगे। (बैठ जाते हैं)

भारतेन्दु

(गले से गजरे को उतार टेबिल पर रखते हुए) श्रद्धेय काशीनरेश

और उपस्थित सज्जन वृन्द !

किन शब्दों में धन्यवाद दूं आप सबको और अपने देशवासी बन्धुओं को इस स्नेह और कृपा के लिए। इस स्नेह में जो स्निग्धता है वह तो कोरी धन्यवाद की रूक्षता से शुष्क हो जायगी। इसलिए इस संबंध में मौन का अवलंबन ही उचित है। दूषण किस प्रकार भूषण हो सकता है, इसका यह 'भारतेन्दु' पदवी एक अनुपम उदाहरण है। कदाचित् ही कोई इस प्रकार का विश्व में दृष्टांत मिल सके।

काशीनरेश ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं अपना संदेश दूं। संदेश की क्षमता तो मुझमें नहीं है, पर आपकी कृपा के इस महान् अवसर का लाभ उठाकर कुछ नम्र निवेदन करता हूँ।

अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रातृ-गन आज।
धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिन्दी हेत समाज॥
तामें आदर अति दिये मोहिं तुम निज जन जान।
जो बुलवायो मोहिं इत दर्शन हित सन्मान॥
जदपि मैं न जानत हूँ कछू सब विधि सों अति दीन।
तदपि भ्रात निज जानि कै सबन कृपा अति कीन॥
भारत में यह देस धनि जहाँ मिलत सब भ्रात॥
निज भाषा हित कटि कसे हम कँह आज लखात॥
निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥
पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत इक बात॥
पढ़े फारसी बहुत विध तौहू भये खराब।
पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकि आब॥
अंग्रेंजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन॥

यह सब भाषा काम की जब लौं बाहर वास।
घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास॥
नारि पुत्र नहिं समझहीं कछु इन भाषन माहिं।
तासों इन भाषान सों काम चलत कछु नाहिं॥
उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय।
निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ़ सब लोय॥
पढ़ो लिखो कोउ लाख बिध भाषा बहुत प्रकार।
पै जबहीं कछु सोचि हो निज भाषा अनुसार॥
सुत सों तिय सों मीत सों भृत्यन सों दिन रात।
जो भाषा मधि कीजिये निज मन की बहु बात॥
ताकी उन्नति के किये सब विधि मिटत कलेस।
जामें सहजति देस कौ इन सबको उपदेस॥
बिबिध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माँहि प्रचार॥
तासों सब मिलि छाँडि कै दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रातगन आय॥
बच्यौ तनिकहू समय नहिं तासों करहु न देर।
औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर॥
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्न।
राज काज दरबार में फैलावहु यह रत्न॥
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र।
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र॥
बैर विरोधहि छोड़ि कै एक जीव सब होय।
करहु जतन उद्धार को मिलि भाई सब कोय॥
सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाइ।
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाइ॥
मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय।

बाल वृद्ध नर नारि सब विद्या संजुल होय॥
फूट बैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत।
भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत॥
कबलौं दुख सहि हौ सबै रहि हौ बने गुलाम।
पाइ मूढ़ कालो अरध-शिक्षित काफिर नाम॥
बिना एक जिय के भये चलि है अब नहिं काम।
तासों कोगे ज्ञान तजि उठहु छोड़ि बिसराम॥
लखहु काल का जग करत सोवहु अब तुम नाहिं।
अब कैसो आयो समय होत कहा जग माँहि॥
बढ़न चहत आगे सबै जग की जेती जाति।
बल बुधि धन विज्ञान में तुम कहँ अबहूँ राति॥
लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान।
हाय फूट इक हमहिं में कारन परत न जान॥
बैर फूट ही सों भयो सब भारत को नास।
तबहुँ न छाँड़त याहि सब बँधे मोह के फाँस॥
छोडहु स्वारथ बात सब उठहु एकचित होय।
मिलहु कमर कसि भ्रातगन पावहु सुख दुख खोय॥
बीती अब दुख की निसा देखहु भया प्रभात।
उठहु हाथ मुँह धोइ कै बाँधहु परिकर भ्रात॥
या दुख सों मरनो भलो धिग जीवन बिन मान।
तासों सब मिलि अब करहु बेगहि ज्ञान विधान॥
कोरी बातन काम कछु चलिहै नाहिंन मीत।
तासों उठि मिलिकै करहु बेग परस्पर प्रीत॥
निज भाषा निज धरम निज मान करम व्यौहार।
सबै बाढ़वहु वेगि मिलि कहत पुकार-पुकार॥
लखहु उदित पूरब भयो भारत भानु-प्रकास।
उठहु खिलावहु हिय कमल करहु तिमिर दुख नास॥

करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावह सूल।
निह भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल॥
लहहु आर्य्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन-खान॥

सज्जनो, अन्त में मैं भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र, आनंद-कन्द से प्रार्थना करूँगा—

उन्नत-चित ह्वै आर्य परस्पर प्रीति बढ़ावैं।
कपट नेह तजि सहज सत्य व्यौहार चलावैं॥
जवन-संसरग-जात दोसगन इनसों छूटैं॥
सबै सुपथ पथ चलैं नितहिं सुख सम्पति लूटैं।
तजि विविध-देव-रति कर्म-मति एक भक्ति पथ सब गहैं।
द्दिय भोगवती सम गुप्त हरि-प्रेम-धार नित ही बहै॥

[बैठ जाते हैं। जोर की करतलध्वनि।]

काशीनरेश

आज के इस आनन्ददायक समारोह में अब और कोई कार्य शेष नहीं है, परन्तु 'मधुरेण समापयेत' की उक्ति के अनुसार अंत में एक गायन होकर यह समारोह समाप्त किया जायगा।

[वाद्यों के साथ गायन आरम्भ होता है।]

जै-जै विष्णुपदी श्री गंगे!
पतित-उधारनि सब जग-तारनि नव उज्जल अंगे॥
शिव-सिर-मालति-माल सरिस वर तरल तर तरंगे।
हरीचंद जन-उधरनि देवी पाप-भोग-भंगे॥

दूसरा दृश्य

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान का वह कक्ष जिसमें उनके घर के ठाकुर श्री मदनमोहन जी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है

समय

मध्याह्न

[कक्ष वही है जो पहले अंक के पहले दृश्य में था। पीछे की दीवाल में रेशमी गोट लगी हुई पिछवाई बँधी हुई है। पिछवाई के आगे सिंहासन है। सिंहासन पर पिछवाई के रंग की ही गोटा लगी हुई रेशमी बिछावन है। बिछावन पर गद्दी तकिए लगे हैं और इस पर मदनमोहन जी और स्वामिनी जी की वे ही प्रतिमाएँ हैं। आज प्रतिमाओं का भारी शृंगार है। सिंहासन के आगे खण्ड, पाट और चौकी हैं। खण्ड, पाट और चौकी पर भी पिछवाई के रंग की ही गोटा लगी हुई रेशमी बिछावन है। इस बिछावन पर खण्ड पर दो लम्बी गद्दियाँ और पाट पर दो चौड़ी गद्दियाँ हैं। खण्ड पर चाँदी की थालियों में चाँदी के खिलौने रखे हैं। पाट पर दोनों गद्दियों के बीच में चौपड़ है जिस पर चाँदी की गोटियाँ और चाँदी के ही पाँसे हैं। पाट पर ही चाँदी के दो लम्बे डन्डे और चाँदी की ही दो गेंदें हैं। चौकी पर मोर की एक फिरकनी है। चौकी के दोनों ओर चाँदी के दो हाथी हैं। राजभोग के अनन्तर 'माला के दर्शन' हो रहे हैं। हरिश्चन्द्र के कुटुम्बी दण्डवत कर करके जा रहे हैं। मुखिया जी 'टेरा' पकड़े खड़े हैं और 'टेरा' बंद करने वाले ही हैं कि हरिश्चन्द्र का प्रवेश। हरिश्चन्द्र इस समय फिर बगल बन्डी और शोला पहने हैं। अब कक्ष में केवल मुखिया जी और हरिश्चन्द्र रह जाते हैं।]

हरिश्चन्द्र

मुखिया जी, आज मेरा जन्मदिन है। 'अनोसर' के पहले ठाकुर जी

को एक पद सुना कर श्रम दूंगा। कुछ प्रार्थना भी करूँगा। मुझे एकान्त चाहिए।

मुखिया

(**जाते हुए**) जैसी आज्ञा।

[**हरिश्चन्द्र तमूरा उठा गान आरम्भ करते हैं।**]

हम नहिं अपुने को पछितात।
यह सोचत कै बिनु मोहिं तारे बात तुम्हारी जात॥
अजामिलादिक के तारन सों भई अतिहि बिख्यात।
सो काहू विधि अब लौं निबही जानी जगत जगात॥
हरीचंद तुमरो औ पापी यह दोऊ अति ख्यात।
तासों ताकहँ तारि कोऊ बिधि राखो अपनी बात॥

हरिश्चन्द्र

(**पद पूर्ण होने पर**) प्रभो! आप...आप तो त्रिकालज्ञ हैं, आपको... आपको नाथ, किसी...किसी बात के स्मरण दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं, पर...पर प्रभो, हम...हम पतित जीवों को न जाने क्या क्या स्मरण करने की आवश्यकता पड़ती है। जब...जब मैंने अपना सोलहवाँ वर्ष पूर्ण कर सत्रहवें वर्ष में पदार्पण किया था तब...तब हे भगवन्, भावी जीवन के संबंध में आपसे कुछ प्रार्थनाएँ की थीं। उसे...उसे आज सोलह वर्ष बीत गए। उस प्रार्थना के पूर्व का सोलह वर्ष का जीवन और...और भगवन्, उस प्रार्थना के पश्चात् का सोलह वर्ष का जीवन?...मैंने प्रार्थना की थी आप आपने जीवन के सदृश मेरा जीवन भी पूर्ण बनाइये। आपने यह संसार रचा है, यह देह दिया है, यह इन्द्रियाँ दी हैं, अतः...अतः नाथ शून्य...केवल शून्य आकाश को अवलोकते हुए इस संसार में सब कुछ त्याज्य मान इस संसार के परे ही न देखा करूँ। ...जो...जो जीवन आपने दिया है उस जीवन का सुख भी भोगूं और...और कर्त्तव्यों का पालन भी करूँ।...वह...वह प्रार्थना गत

सोलह वर्षों में जीवन का एकमात्र अवलम्ब रही है। उसी प्रार्थना के अनुसार जीवन को चलाने का उद्योग किया है और...और जीवन का सुख भोगते हुए इस परिवर्तनशील संसार में परिवर्तित होते हुए कर्तव्यों के पालन का भी प्रयत्न किया है। (**कुछ रुककर चुपचाप मदनमोहन जी की मूर्ति को देखने के पश्चात्**) पर...पर प्रभो; बार बार मन में उठता है कि क्या मेरा यह प्रयत्न सफल हुआ है। जीवन के सुख भोगने की इच्छा ने क्या...क्या मेरा पतन नहीं कराया? दैवयोग या पूर्वजन्म के संयोग से जिससे विवाह हुआ था उसी के प्रति सच्चे रहकर उसी के साथ सारे सुख न भोग ये नर्तकिएँ...यह माधवी!...यह मल्लिका!...पर...पर...करूँ क्या! यह मानते हुए भी कि मेरा पतन...अधःपतन हो रहा है, मैं अपने को किसी प्रकार भी रोक...रोक नहीं सका।...लाख...करोड़...असंख्य प्रयत्न करने पर भी मन्नो के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं...नहीं हो सका। वह...वह मानवी नहीं, देवी है। पवित्र...पावन और जब उसे देखता हूँ तो...तो जान पड़ता है मैं...मैं मानव भी नहीं, उससे...उससे भी नीचे की कोई योनि का हूँ, पतित, पातकी। डाक्टर ईश्वरचन्द्र चौधरी ने, नाथ, जबसे...जबसे एक पत्र भेजा है, तबसे...तबसे तो मैं अपने को न जाने किस...किस घृणास्पद, हाँ, घृणास्पद रूप में देखने लगा हूँ। (**कुछ रुककर चुपचाप मदनमोहन जी की मूर्ति को देखने के पश्चात्**) प्रेम...प्रेम की उत्पत्ति होती है माधवी के लिए, मल्लिका के लिए। पर...पर वह प्रेम है या लालसा? किन्तु...किन्तु वे भावनाएँ माधवी और मल्लिका के प्रति लालसा की भावनाएँ नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि...क्योंकि प्रभो, उनके प्रति जो भावनाएँ उठती हैं वे...वे उन भावनाओं से भिन्न हैं जो अन्य नर्तकिओं के प्रति रहती हैं, वे लालसात्मक भावनाएँ, माधवी और मल्लिका के प्रति जो भावनाएँ हैं, वे लालसात्मक नहीं। और...और भगवन्, माधवी और मल्लिका की भावनाएँ भी मेरे प्रति! उन दोनों ने भी मुझे सच्चा पति मान अपना सर्वस्व, हाँ, अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर दिया है।...कोई...कोई भी

नर्तकी किसी...किसी के लिए भी यह...यह कर सकती है! तो...तो क्या, नाथ, इन दोनों का और मेरा भी कोई पूर्वजन्म का संयोग था? आपके...प्रभो...आपके सिवा कौन...कौन जानता है इसे! तदीय समाज के जिस...जिस प्रतिज्ञा-पत्र पर मैंने हस्ताक्षर किये थे, नाथ, उसमें अनेक...अनेक नैतिक हाँ, नैतिक प्रतिज्ञाएँ थीं; प्राणपण से आज पर्यन्त मैंने उनका पालन किया।...कभी...कभी असत्य का आश्रय नहीं लिया, कभी...किसी का अपकार...अपकार नहीं किया। फिर भी...फिर भी नाथ, इस एक इन्द्रियदौर्बल्य के कारण मैं कलंकी...कलंकी नाना... माना जाता हूँ, भगवन्! मनुष्य...मनुष्य सामाजिक प्राणी है, कन्दराओं में एकाकी रहने वाला व्याघ्रादि पशु...पशु नहीं। अतः समाज में जो नैतिक नहीं माना जाता, वह...वह यदि मानव करे तो...तो...वह कलंकी तो माना ही जायगा।...फिर...फिर अब एक बात बार-बार मन में उठती है जीवन के इस प्रकार के सुख भोगने की इच्छा...इच्छा ही कदाचित् गलत है। (**कुछ देर रुककर चुपचाप मदनमोहन जी की मूर्ति को देखने के पश्चात्**) हाँ, कर्तव्यपालन की दिशा मैंने आपकी...आपकी ही प्रेरणा से ठीक चुन ली भगवन्! मेरे पूर्वज अमीचन्द का पाप सदा... सदा...सम्मुख रहा, जिस धन...जिस धन के लिए उन्होंने वह...वह पाप किया था, उसे दोनों हाथों से उलीचा...ऐसा उलीचा, नाथ, जैसा कदाचित् किसी ने न उलीचा होगा। उन्होंने देश को विदेशियों के हाथ बेच दिया था। मुझे इस बात का संतोष...पूर्ण संतोष है, भगवन्, इस समय की परिस्थिति में देश के उद्धार के लिए जिन...जिन भावनाओं को जनता में भरने की आवश्यकता थी, उन्हें भरने में मैंने कोई बात उठा न रक्खी।...मेरे पूर्वज अमीचन्द के पाप का प्रायश्चित्त...पूर्ण प्रायश्चित्त हो गया। (**कुछ रुककर चुपचाप मदनमोहन जी की मूर्ति की ओर देखने के पश्चात्**) अब...अब आगे का जीवन नाथ!...आप...आप पर ही छोड़ता हूँ।

[तम्बूरा उठा फिर गाते हैं।]

प्रभु हो ! कब लौं नाच नचैहो ।
अपने जन के निलज तमासे कबलौं जगहि दिखैहो ॥
कबलौं इन बिमुखन के मुख सों निज गुन-गनहि लजैहो ॥
कबलौं जिनपै सतत हँसत जन तिनसों हमहिं हँसैहो ॥
छिन-छिन बूड़त जात पंक लखि मोहि कब चित्त द्रवैहो ॥
जनम जनम के निज हरिचंदहि कब फिरिकै अपनैहो ॥

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान

काशी की नाट्यशाला

समय

रात्रि

[सामने रंगमंच है। अभी यवनिका उठी नहीं है। सामने रंगमंच की ओर मुंह किए हुए लोग बैठे हैं। यवनिका उठने में कुछ देर होने के कारण लोग जोर-जोर से तालियाँ बजा रहे हैं। कुछ सीटियाँ भी। रंगमंच पर यवनिका के बाहर राधाकृष्णदास आते हैं।]

राधाकृष्णदास

सज्जनो ! आपको थोड़ा धैर्य रखना चाहिए। आप जानते हैं आजकल भारतेन्दु जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, इतने पर भी आप लोगों के अत्यधिक आग्रह के कारण उन्होंने स्वयं आज के नाटक में पार्ट लेना स्वीकार किया है। उनकी अस्वस्थता के कारण ही खेल आरम्भ होने में थोड़ी देर हुई है। आप धैर्य रक्खें, यवनिका तुरन्त उठती है।

[राधाकृष्णदास का प्रस्थान। यवनिका उठती है।]

स्थान

एक मार्ग

[एक ब्राह्मण नांदीपाठ करता है। ब्राह्मण धोती पहने, उत्तरीय गले में डाले, मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाए है।]

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरक घन कोऊ लखि नाचत मनमोर॥

[ब्राह्मण का प्रस्थान, मलिन मुख किए सूत्रधार आता है, सूत्रधार अँगरखा और धोती पहने है। गले में दुपट्टा डाले है। सिर पर उत्तर प्रदेश की गोल पगड़ी बाँधे है। मस्तक पर वल्लभ सम्प्रदाय का तिलक है।]

सूत्रधार

क्या नाटक खेलें, क्या न खेलें? सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु, पिता, मित्र, पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्त्ति, सत्य का एकमात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता हरिश्चन्द्र ही दुखी हो। (**नेत्रों में जल भरकर**) हाँ, सज्जन-शिरोमणि! कुछ चिंता नहीं, तेरा तो बाना है कि कितना ही दुख हो उसे सुख ही मानना। लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्त्ति तक का परित्याग कर दिया और जगत् से विपरीत गति चलकर तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक रखकर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहीं है। तुझे इससे क्या? प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सर्वस्व है, वे जब, जहाँ उत्पन्न होंगे, तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन-सहन को अपनी जीवन-पद्धति समझेंगे।

(**नेत्रों से आँसू गिरते हैं**) मित्र, तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निंदा से क्या! इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो? स्मरण रक्खो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोग बहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—

कहैंगे सबै ही ही नैन नीर भरि भरि।
पाछे, प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी॥

[नटी का प्रवेश। वह बनारसी साड़ी और सलूका पहने है। आभूषण भी धारण किए है।]

नटी

(**सूत्रधार का मुंह देखते हुए**) कैसा. . .कैसा मलिन मुख हो रहा है, नाथ? जो 'भारत-दुर्दशा' नाटक खेला जाने वाला है, उसी के कारण क्या तुम्हारी यह दुर्दशा है! तुम्हारे जिस प्रकार आँसू बह रहे हैं, उसी प्रकार यह योगी कह रहा है "रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई। हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

[दोनों का प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

स्थान

एक मार्ग

[एक योगी गा रहा है।]

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा-हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।

ताहु पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईश देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ (प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

स्थान

एक श्मशान

[भारत का प्रवेश। फटे कपड़े पहने है, सिर पर अर्धकिरीट, हाथ में लेकने की छड़ी, शिथिल अंग।)

भारत

हा! यह वही भूमि है, जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था—"सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव" और आज हम उसी भूमि को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। (गाता है)।

कोउ नहिं पकरत मेरो हाथ।
जाकी सरन गहत सुई मारत सुनत न कोउ दुख गात॥
दिन दिन विपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब विधि दुख सागर में डूबत धाय उबारो नाथ॥

[नेपथ्य में गम्भीर और कठोर स्वर से]

अब भी तुमको अपने नाथ का भरोसा है? खड़ा तो रह, अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।

भारत

(डरता और कांपता हुआ रोकर) अरे, यह विकराल-वदन कौन मुँह बाये मेरी ओर दौड़ता चला आता है? **(मूर्छित होकर गिरता है।)**

[निर्लज्जता आती है। जाँघिया पहने, सिर खुला, ऊँची चोली, दुपट्टा ऐसा गिरता-पड़ता कि अंग खुले। खानगियों जैसा वेश।]

निर्लज्जता

मेरे अछत तुमको अपने प्राण की फिक्र! छिः छः! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ जो धन-मान सब गया—"एक ज़िंदगी हज़ार नेआमत है।" (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया! तो उठा ले चलें। नहीं-नहीं मुझसे अकेले न उठेगा। (नेपथ्य की ओर) आशा! आशा! जल्दी आओ।

[आशा आती है। लड़की का वेश]

निर्लज्जता

यह देखो भारत माता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो।

आशा

मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है? ले चलो, अभी जिलाती हूँ।

[दोनों उठाकर भारत को ले जाते हैं।]

पट-परिवर्तन

स्थान

एक मैदान

[फौज के डेरे दिखायी पड़ते हैं। भारत दुर्दैव आता है। क्रूर आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी वेश। हाथ में नंगी तलवार लिए हुए।]

भारत दुर्दैव

कहाँ गया भारत मूर्ख! जिसको अभी परमेश्वर का भरोसा है! देखो तो अभी इसकी क्या-क्या दुर्दशा होती है। (नाचता और गाता है)

अरे!

उपजा ईश्वर कोप से औ' आया भारत बीच।
छार खार सब हिन्द करूँ मैं तो उत्तम नहिं नीच।
मुझे तुम सहज न जानो जी मुझे इक राक्षस मानो जी॥
कौड़ी कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूँ इनका तो मैं सच्चा राज॥ मुझे०
काल भी लाऊँ मँहगी लाऊँ और बुलाऊँ रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊँ छाऊँ जग में सोग॥ मुझे०
फूट बैर और कलह बुलाऊँ ल्याऊँ सुस्ती जोर।
घर में आलस फैलाऊँ छाऊँ दुख घन घोर॥ मुझे०
काफिर काला नीच पुकारूँ तोडूँ पैर औ हाथ।
दूँ इनको संतोष खुशामद कायरता भी साथ॥ मुझे०
मरी बुलाऊँ देस उजाडूं मँहगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ धन है मुझ को धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी मुझे इक राक्षस मानो जी॥

अब !

भारत कहाँ जाता है, मैं अपनी फौज ही भेजके सब चौपट करता हूँ। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) अरे, कोई है ? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो !

[**नेपथ्य से 'जो आज्ञा' शब्द सुन पड़ता है। सत्यानाश फौजदार आते हैं।**]

सत्यानाश फौजदार

(**नाचते हुए**)

हमारा नाम है सत्यानाश।
आए हैं राजा के हम पास॥
घर के हम लाखों ही भेस।
किया चौपट यह सारा देस॥

बहुत हमने फैलाए धर्म्म।
बढ़ाया छुआछूत का कर्म्म॥

भारत दुर्दैव

अहा सत्यानाश जी आए! आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिलके चारों ओर से हिन्दुस्तान को घेर लें। जो पहले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चलें।

सत्यानाश फौजदार

जिनको आज्ञा हो चुकी है, वे तो अपना काम कर ही चुके।

भारत दुर्दैव

किस-किस ने क्या-क्या किया है?

सत्यानाश फौजदार

महाराज! धर्म ने सबसे पहले सेवा की।

जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान-पान संबध सबन सों बरजि छुड़ायो॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल-वीरज मार्‌यौ।
विधवा-ब्याह निषेध कियो व्यभिचार प्रचार्‌यौ॥
रोकि विलायत-गमन कूप मंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय॥

भारत दुर्दैव

और भी कुछ?

सत्यानाश फौजदार

हाँ, महाराज वेदान्त ने बड़ा ही उपकार किया है। सब हिन्दू ब्रह्म हो गये। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही। फिर महाराज,

संतोष ने बड़ा काम किया। राजा प्रजा, सबको अपना चेला बना लिया। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। जो धन की सेना बची थी, उसको जीतने को भी मैंने बड़े बाँके वीर भेजे—अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश। इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितर-बितर कर दी।

भारत दुर्दैव

और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे?

सत्यानाश फौजदार

हाँ, सुनिए! फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता, इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला-मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड हो गए। फिर अंत में भिन्नता गयी। इसने सबको ऐसा काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक-एक योजन पर अलग-अलग कर दिया। अब आवें बचा ऐक्य! देखें आ ही के क्या करते हैं!

भारत दुर्दैव

वाह! वाह! बड़े आनन्द की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ। अब भारत कहाँ जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज

सत्यानाश फौजदार

जो आज्ञा। (**जाता है**)

भारत दुर्दैव

अब उसको कहीं शरण न मिलेगी। धन, बल और विद्या, तीनों गईं। अब किसके बल कूदेगा?

पट-परिवर्तन

स्थान

एक कमरा

[कमरा अंग्रेजी ढंग से सजा हुआ। मेज कुर्सी लगी हुई। भारत दुर्दैव आकर कुर्सी पर बैठता है। रोग का प्रवेश।]

रोग

(गाते हुए)

जगत सब मानत मेरी आन।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित शिकार भगवान॥
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मो सम और न आन।
परम पिता हम ही वैद्यन के अत्तारन के प्रान॥

(भारत दुर्दैव को देखकर) महाराज, क्या आज्ञा है?

भारत दुर्दैव

भारत को चारों ओर से घेर लो।

[रोग प्रणाम करके जाता है। आलस्य, जो खूब मोटा व्यक्ति है, जँभाई लेते हुए धीरे-धीरे आता है।]

आलस्य

ह-हा! एक पोस्ती ने कहा, पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस। दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा, डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कुँडी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था। पहिले ने पुकारा—"भाई सावार सवार, यह पक्का आम टपककर मेरी छाती पर पड़ा है। जरा मेरे मुँह में तो डाल दो।" सवार ने कहा—"अजी तुम बड़े आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है, सिर्फ हाथ से उठाकर मुँह में डालने में यह आलस है!" दूसरा बोला—

"ठीक है साहब, वह बड़ा ही आलसी है। रातभर कुत्ता मेरा मुंह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था, पर इसने न हाँका।" सच है किस जिन्दगी के वास्ते तकलीफ उठाना, मजे में हालमस्त पड़े रहना। सुख केवल हममें है "आलसी पड़े कुए में वहीं चैन है।" (गाता है)

दुनियाँ में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठ के कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पै मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥

और क्या, काजी जी दुबले क्यों हैं शहर के अंदेशे से। अरे "कोउ नृप होऊ हमैं का हानी, चेरी छोड़ि नहिं होउब रानी।" आनन्द से जन्म बिताना।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए सब के दाता राम॥
जो पठतव्यं सो मरतव्यं, जो न पठतव्यं
सो भी मरतव्यं, तब फिर दंत कटाकट किं कर्त्तव्यं?

(भारत दुर्दैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची, ज्यों-त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ। अब हुक्म!

भारत दुर्दैव

तुम्हारे और साथी सब हिन्दुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ, अपनी जोग-निद्रा से सब को अपने वश में करो।

पट-परिवर्तन

स्थान

गंभीर वन का मध्य भाग

[**भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है। भारत भाग्य के रूप में भारतेन्दु गाते हुए आते हैं।**]

जागो जागो रे भाई
सोवत निशि वैस गँवाई
जागो जागो रे भाई।

[भारत को जगाता है, जब वह नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है। अंत में हारकर उदास होकर]

हा ! भारतवर्ष को कैसी मोहनिद्रा ने घेरा है। सच है जो जान-बूझकर सोता है, उसे कौन जगा सकता है ! हे...

[भारतेन्दु मूर्छित होकर गिरते हैं। सारी नाट्यशाला में खलबली मच जाती है।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान

हरिश्चन्द्र के मकान की नीचे की मजिल का कमरा

समय

रात्रि

[कमरेकी दीवाले कलई से पुती हुई हैं। कुछ दरवाजे हैं जिनके किवाड लकड़ी के हैं। दीवालों पर भगवान श्रीकृष्ण की लीला के अनेक चित्र लगे हुए हैं। एक तखत पर ऊनी बिछावन बिछी है जिस पर रोगग्रस्त हरिश्चन्द्र लेटे हैं। तखत के निकट कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक जमीन पर कुछ स्त्रियाँ बैठी हैं। कुछ कुर्सियाँ खाली हैं, कुछ पर काशी के अनेक प्रतिष्ठित नागरिक बैठे हैं। जमीन पर भी कुछ नागरिक बैठे हुए हैं, इन्हीं मे काशीनरेश, गोकुलचन्द्र, राय कृष्णदेवशरणसिंह, राधाकृष्णदास, बदरीनारायण 'प्रेमधन', प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह, बाबा सुमेरसिंह, रामशंकर व्यास, माधवदास, राय नृसिंहदास, गोस्वामी राधाचरण, डाक्टर ईश्वरचन्द्र चौधरी भी हैं। कुछ और डाक्टर वैद्य भी हैं। एक ओर धीरे-धीरे श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ हो रहा है। कोई-कोई श्लोक जोर से भी सुनायी देता है। सारे कमरे मे चिंता का राज्य-सा छाया हुआ है। हिरिया का प्रवेश।]

हिरिया

(**हरिश्चन्द्र के निकट आकर**) मालकिन ने तबियत पूछी है!

हरिश्चन्द्र

(**हँसकर**) कह दो हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखे 'लास्ट नाइट' कब होती है!

(हरिया का प्रस्थान । कुछ देर निस्तब्धता ।)

हरिश्चन्द्र

व्याध हूँ तें विहद् असाधु हौं अजामिल लौं,
ग्राहतें गुनाही कहो तिन में गिनाओगे ।
स्योरी हौं न शूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यों,
न गोतमी तिया हौं जापे पग धरि आओगे ।
रामसों कहत पदमाकर पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पार हूँ न पाओगे ।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
(नाथ !) हौं तो साँचो हूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ॥

[आँखों से आँसू बहते हैं । श्रीकृष्णः शरणं मम, श्री कृष्णः शरणं मम । फिर से निस्तब्धता ।]

हरिश्चन्द्र

अरे, अरे गोकुल ! कृष्णचन्द्र को बुलाया था, वह अब तक नहीं आया ? कहना अच्छे कपड़े पहनकर आये ।

[गोकुलचन्द्र का प्रस्थान और बालक कृष्णचन्द्र के साथ प्रवेश । कृष्णचन्द्र हरिश्चन्द्र के निकट जाता है ।]

हरिश्चन्द्र

आ गया कृष्णचन्द्र ! (उसे गौर से देखते हुए) इससे भी अच्छे कपड़े पहनकर आ ।

[गोकुलचन्द्र कृष्णचन्द्र को लेकर फिर जाते हैं । फिर कुछ देर निस्तब्धता ।]

काशीनरेश

(कुर्सी पर से उठकर हरिश्चन्द्र के निकट जाकर) अब कैसी तबियत है, बबुआजी ?

हरिश्चन्द्र

(मुस्कराकर) क्या कहूँ, चाचाजी !

डङ्का कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई ।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई ॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई ॥
हरीचन्द हरि पद बिनु नहिं तौ रहि जैहो मुँह बाई॥

श्रीकृष्ण. शरणं मम, श्रीकृष्णः शरणं मम ।

[काशीनरेश पुनः कुर्सी पर बैठ जाते हैं। कुछ देर फिर निस्तब्धता। कृष्णचन्द्र का गोकुलचन्द्र के साथ प्रवेश। अब वह बहुत अच्छे कपड़े पहने हैं। कृष्णचन्द्र हरिश्चन्द्र के निकट जाता है।]

हरिश्चन्द्र

(कृष्णचन्द्र को देखकर) हाँ, अब अच्छे कपड़े पहनकर आया ! बैठ, मेरे पास बैठ ! (कृष्णचन्द्र तख्त पर बैठता है) अरे, अंगूर है यहाँ ? (राधाकृष्णदास अंगूर लाकर देते हैं) ले अंगूर खा !

[कृष्णचन्द्र अंगूर खाता है । हरिश्चन्द्र अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रख कुछ देर ध्यानावस्थित रहते हैं और धीरे-धीरे कहते हैं, श्रीकृष्णः शरणं मम, श्रीकृष्णः शरणं मम । फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

हरिश्चन्द्र

(कृष्णचन्द्र के कुछ अंगूर खा लेने पर) अच्छा, जा खेल !

[कृष्णचन्द्र का प्रस्थान। शिवप्रसाद का प्रवेश।]

शिवप्रसाद

(हरिश्चन्द्र के निकट जाकर) क्यों कैसी तबियत है, बबुआ ?

हरिश्चन्द्र

(जिनकी आँखें बंद थीं, आँखें खोलकर) कौन ? गुरुवर ! आप... आप भी पधार आये।....चरण आगे कीजिये...कीजिये गुरुवर, मैं जाते-जाते आपके चरण स्पर्श करूँगा।

[शिवप्रसाद पैर आगे नहीं करते । उनके नेत्रों से आँसू बह निकलते हैं। कमरे में उपस्थित प्रायः सभी लोग सजल नयन हो जाते हैं।]

हरिश्चन्द्र

क्यों. . .क्यों, आप संकोच क्यों कर रहे हैं, गुरुवर ! . . .क्या. . . क्या इसके पहले मैंने कभी आपके चरण-स्पर्श नहीं किए।. . .इस समय. . . इस समय क्या यह मेरी साध मन में ही रह जायगी ? (**फिर भी जब शिवप्रसाद पैर आगे नहीं करते**) देखिए गुरुवर, आप चरण-स्पर्श न करने देंगे तो इस हालत में भी मैं तखत से उठकर आपके पैरों पर गिर पड़ूँगा।

[शिवप्रसाद आँसू बहाते हुए अपने पैर आगे कर देते हैं। हरिश्चन्द्र शिवप्रसाद के पैरों को पकड़ लेते हैं, हरिश्चन्द्र के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलती है। शिवप्रसाद अपने दोनों हाथ हरिश्चन्द्र के सिर पर रखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता। हरिश्चन्द्र के पैर छोड़ने पर शिवप्रसाद एक कुर्सी पर बैठ जाते हैं। उनका चेहरा एकदम नीचे झुक जाता है और आँखों से आँसू बहते रहते हैं। माधवी और मल्लिका का प्रवेश। दोनों हरिश्चन्द्र के निकट जाती हैं, पर कुछ बोलती नहीं।]

हरिश्चन्द्र

(**माधवी और मल्लिका को देखकर**) अच्छा, तुम लोग भी आ गयी ! हाँ, इस समय कहाँ का संकोच (**दोनों आँसू बहाती हुई एक ओर खड़ी हो जाती हैं**) गोकुल ! (**गोकुलचन्द के पास आने पर**) देखो, तुम्हें इन दोनों का ख्याल रखना होगा। (**कुछ रुककर**)

ले चले दो फूल भी इस
बागे आलम से न हम।
वक्त रेहलत हैफ है खाली ही
दामाँ रह गया ॥

(**कुछ रुककर शिवप्रसाद से धीमे स्वर में**) पानी दीजिएगा गुरुवर !

[शिवप्रसाद पास ही में रखे हुए एक चाँदी के लौटे से चाँदी के गिलास में पानी ले जाते हैं।]

हरिश्चन्द्र

(उसी प्रकार धीमे स्वर में) यह पानी नहीं, घनानंद का सवैया चाहिए।

शिवप्रसाद

अति सूचो सनेह को मारग है,
जँह नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचै चलै तजि आपनभौ,
झिझिकै कपटी जो निसाँक नहीं।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनो,
इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छँटाक नहीं।

[हरिश्चन्द्र आँख बंद कर इसी सवैये को गुनगुनाते हैं। कुछ देर निस्तब्धता। मन्नोदेवी और विद्यावती का प्रवेश। दोनों हरिश्चन्द्र के निकट आती हैं। मन्नोदेवी अत्यन्त उद्विग्न और अस्त-व्यस्त हैं।]

हरिश्चन्द्र

(विद्यावती के सिर पर हाथ रखकर मन्नोदेवी से) मानवी नहीं तुम देवी हो, पवित्र, पावन मेरी पूजनीया...परम पूजनीया.....आगे करो...आगे करो अपने चरण। मैं इस समय उनकी...उनकी भी वन्दना....

[हरिश्चन्द्र मूर्छित हो जाते हैं। मन्नोदेवी बिलख-बिलख कर रो पड़ती हैं। कुछ देर कोई कुछ नहीं बोलता।]

(**एकदम चिल्लाकर पर क्षीण स्वर से**) श्रीकृष्ण ! . . .श्री राधाकृष्ण ! . . .हे राम ! . . आते है, मुख. . .मुख दिखलाओ, (**कुछ रुककर मानो कोई दोहा पढ़ रहे हों, अत्यन्त क्षोण स्वर में**) श्रीकृष्ण. . . .सहित स्वामिनी. . .

[**हरिश्चन्द्र की मृत्यु । तमाम कमरे मे हाहाकार मच जाता है। परन्तु, उस हाहाकार की अपेक्षा भी बुलन्द स्वर मे नेपथ्य मे सुनायी देता है—**

जब लौं भारत भूमि मध्य आरज कुल बासा ।
जब लौं आरज धर्म माँहि आरज विश्वासा ॥
ज बलौं गुन आगरी नागरी आरज बानी ।
जब लौं आरज बानी के आरज अभिमानी ॥
तब लौं यह तुम्हरो नाम थिर चिरजीवी रहि है अटल ।
नित चन्द सूर सम सुमिरि हैं हरिचन्दहु सज्जन सकल ॥

अशुद्धि-शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९-२०	केजदीवाल	केजरीवाल
२७	१२	चबतरे	चबूतरे
२७	१५	बागा	बागड़
४५	२	घटनाएँ	घटाएँ
७१	९	मदनगोपाल	मदनमोहन
७३	११	काशीनाथ	काशीनरेश
८०	६	करण	चरण
८७	३	निभानन	विभानन
८८	७	मुकदमों	मुकदमें
८९	२	चें	चूं
८९	२२	हुए	हैं
९३	१८	में	ने
९५	३	गिरिधरदास	श्री गिरिधरदास
९६	१५	मैं न जानत हूं	न मैं जानत
९६	२३	हक	इक
९९	२	निह	निज
१०२	२४	भावनाएँ	भावनाएँ हैं
१०५	७	अपूरक	अपूरब
१०६	६	ही	यही
१०८	४	अछत	आछत
१०८	११	माता है	मरता है
१०९	१०	घर	घर घर